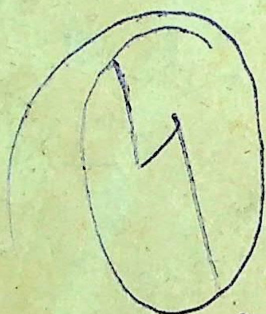
ग्रन्थालय वर्गीकरण के आधारभूत सिद्धान्त



लेखक :—
भास्करनाथ तिवारी
बी० ए०; डी० एल० एस-सी०

प्रमुख विक्रेता—
साहित्य-निकेतन
बरेली

मूल्य २.२५ नये पैसे

निवेदन

ग्रन्थालय विज्ञान के उत्तरोत्तर प्रगतिशील होते हुए भी इसमें प्रायः हिन्दी भाषा के ग्रन्थों का अभाव सा है। इधर कुछ दिनों से श्री मुरारी लाल जी नागर, श्री श्रीकृष्ण खण्डेलवाल आदि कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर खिंचा और फलस्वरूप कुछ वर्षों में ही कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। महापण्डित डा० रंगनाथन के आंग्ल ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद से भी इस अभाव की काफी पूर्ति हुई है।

परन्तु मुझे हिन्दी भाषा में ग्रन्थालय वर्गीकरण के सिद्धांतों की व्याख्या करनेवाले किसी भी ग्रन्थों का न होना एक अभाव सा ही प्रतीत हुआ। कह नहीं सकता कि यह ग्रन्थ इस अभाव की पूर्ति कर सकेगा या नहीं, मैंने प्रयत्न यही किया है कि इस विषय पर भी हिन्दी भाषा में एक ग्रन्थ सुलभ हो सके। विद्वान् ग्रन्थालय शास्त्रियों के हाथ में इस ग्रन्थ को देखते हुए मुझे संकोच अवश्य हो रहा है। होना भी चाहिए।

इतना और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह कोई मेरी अपनी खोज नहीं है। श्री वरविक सेअर्स और डा० रंगनाथन ने जो आधार-शिला बनाई है, उसी की नींव पर इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है। मुझे आशा है कि इस ग्रन्थ को विद्वान् पाठक अपना लेंगे और यदि अभीष्ट की पूर्ति हो सकी तो मेरा प्रयास सफल हो जायगा।

भवदीय

भास्कर नाथ तिवारी

महा शिवरात्रि, २०१३

शान्ति कुटीर

तहसील चौराहा

उन्नाव।

प्रथमोच्छ्वास

विषय-प्रवेश

वर्गीकरण के आधारभूत सिद्धान्तों पर विचार करने के पूर्व यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि हम कुछ अनिवार्य प्रश्नों को समझ लें। विषय का गम्भीर ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही उस पर अन्य दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है। वर्गीकरण क्या है? ग्रन्थालय वर्गीकरण क्या है? इसका क्या महत्त्व है? वर्गीकरण के ध्येय क्या हैं? इसके साथ ही अन्य विभिन्न वर्गीकरणों पर भी विचार करना अनिवार्य है।

वर्गीकरण का आंग्लभाषा में समकक्ष शब्द क्लासीफिकेशन (Classification) है। जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन शब्द क्लासिस (Classis) से हुई। प्राचीन समय में रोम में धन एवं सम्पत्ति के आधार पर समाज को ६ प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता था। क्लासिस शब्द का प्रयोग इन ६ वर्गों में से किसी एक को प्रकट करने के लिए किया जाता था। आज भी इसका उपयोग प्राचीन उपयोग से साम्य रखता है। एक ही प्रकार के गुण एवं विशेषता रखनेवाली वस्तुओं को वर्ग कहते हैं।

वर्गीकरण वस्तुओं को वाह्य अथवा आन्तरिक गुणों के आधार पर विभाजित करता है। समान गुणोंवाली वस्तुओं के यूथ निर्माण करता है। यह एक नैसर्गिक सिद्धान्त है। ब्रह्मांड की समस्त चेतन तथा अचेतन वस्तुओं में समता और असमता के आधार पर विशिष्ट वर्ग निर्मित करता है। इस प्रकार वर्ग तथा वर्गीकरण का निर्माण नैसर्गिक है। हमारे दैनिक जीवन की क्रियाओं में इसका स्थान है। वर्गीकरण मानव स्वभाव में निसर्गतः विद्यमान है। किसी वस्तु को देखकर हमारे मस्तिष्क में उसके

सम्बन्ध में विविधि विचार उत्पन्न होते हैं। उन्हें अपने स्वार्थ एवं रुचि के आधार पर हम अच्छे और बुरे विशेषणों से विभूषित करते हैं। इस प्रकार स्वभावतः हम उनका वर्गीकरण करते हैं।

डा० रंगनाथन के शब्दों में ग्रन्थालय वर्गीकरण ग्रन्थों के विशिष्ट विषय का क्रमसंख्या की कृत्रिम भाषा में रूपान्तर है। एक ही विशिष्ट विषय के ग्रन्थों में से किसी एक ग्रन्थ को उसका निश्चित स्थान प्राप्त कराने के लिए उसे एक और क्रमसंख्याओं के समूह से अलग किया जाता है जो ग्रन्थ में निहित विचारों के अतिरिक्त कुछ और बताते हैं।

पुस्तकालय की आधारशिला पुस्तक और पुस्तकाध्यक्ष की वर्गीकरण है। पुस्तकालय में असंख्य ग्रन्थों का संग्रह होता है अतएव यदि हम नियमित ग्रन्थालय का निर्माण करना चाहें, उसका ठीक से संचालन करना चाहें और उसे पाठकों के लिए उपयुक्त लाभप्रद बनाना चाहें तो हमें वर्गीकरण करना ही होगा। वर्गीकरण ऐसा होना चाहिए जो पुस्तकाकृत मानव ज्ञान को पूर्णतः प्रस्तुत कर सके। किसी भी प्रकार और किसी भी मूल्य पर आसंग ग्रन्थालय में ग्रन्थ व्यवस्थापन के बिना हमारा कार्य चल ही नहीं सकता। वर्गीकरण हीन ग्रन्थालय से पाठक को निराशामात्र प्राप्त होगी। इसके साथ ही पाठक का अमूल्य समय और परिश्रम भी व्यर्थ जायगा।

डा० श्रि० रा० रंगनाथन के अनुसार ग्रन्थालय वर्गीकरण पुस्तकालय विज्ञान की परम व्युत्पन्न सारभूत शाखा है। तीक्ष्ण एवं विश्लेषणात्मक मस्तिक ज्ञान, ग्रन्थ जगत से अटूट सम्पर्क तथा अटल एवं दीर्घकालीन मर्यादा ग्रन्थालय वर्गीकरण पर अधिकार पाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

हेनरी इवेलिन ब्लिस के अनुसार प्रत्येक लेखक ज्ञान-क्षेत्र से अपने ग्रन्थ हेतु विषय सामग्री एकत्रित करता है। वैज्ञानिक इस बात से सम्मत हैं कि विषय सामग्री का किसी प्रकार अनुकूल वर्गीकरण करना चाहिए। तार्किक तथा दार्शनिक वर्गीकरण से सम्मत हो भी सकते हैं और नहीं भी।

वर्गीकरण विज्ञान का प्रमुख सिद्धान्त है। विज्ञान के उद्भव के साथ-साथ ही वर्गीकरण का भी विकास हुआ है। जैसे-जैसे वैज्ञानिक क्षेत्रों में विकास होता जाता है वर्गीकरण का महत्त्व भी बढ़ता जाता है।

वर्गीकरण का लक्ष्य—वर्गीकरण स्वयं साध्य नहीं है। यह ग्रन्थालय पंचसूत्र जिनका डा० श्रि० रा० रंगनाथन ने अपनी एक 'ग्रन्थालय पंसूचत्री' नामक पुस्तक में उल्लेख किया है, के ध्येय की प्राप्ति का साधन है। जहाँ प्रत्येक पाठक को ग्रन्थ उपलब्ध होने चाहिए, प्रत्येक ग्रन्थ को उसका पाठक मिलना चाहिए, और पाठक के अमूल्य समय को नष्ट होने से बचाना होता है वहाँ आसंग, फलकदर्शक, ग्रन्थ सूची इत्यादि अनेक साधनों का उपयोग किया जाना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। परन्तु इससे भी अत्यन्त आवश्यक होता है ग्रन्थों को फलक पर अनुकूल क्रम से व्यवस्थित करना। पाठक ग्रन्थों को फलक पर से पढ़ने के लिए निकालता है और पुनः उन्हें पूर्व स्थान पर व्यवस्थित करता हैं। इसके लिये एक मान्यक्रम की आवश्यकता होती है। मान्यक्रम के न होने पर ग्रन्थ अपने पूर्व स्थान के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर भी जा सकता है। इस प्रकार किसी ग्रन्थ का स्थान निश्चित न होने के कारण सहायक को एक-एक ग्रन्थ को निकालने के लिए सम्पूर्ण संग्रह देखना पड़ेगा। इसी प्रकार समय-समय पर क्रय किये गये ग्रन्थों को वर्तमान क्रम में उचित स्थान पर व्यवस्थित करने तथा उनका स्थायी स्थान निर्धारण के लिए भी एक मान्य स्थायी क्रम की आवश्यकता होती है।

ग्रन्थों को उनके आकार के आधार पर फलक पर सजाया जा सकता है। इसी प्रकार उनके रंग और आकार के आधार पर भी उनकी व्यवस्था की जा सकती है। फलक व्यवस्था के लिए उपर्युक्त आधार भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं परन्तु उपर्युक्त कोई भी गुण ग्रन्थ के स्थायी गुण नहीं हैं। आवरण और जिल्दसाजी के बाद इन गुणों में परिवर्तन हो जाता हैं। जिल्दसाज ग्रन्थ के किनारे ठीक करने के लिए उन्हें काटकर छोटा कर देता है और प्रायः आवरण के रंग में भी परिवर्तन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त एक ही ग्रन्थ अनेक आवरणों एवं आकारों में प्रकाशित होता है अतएव यदि ग्रन्थ व्यवस्थापन आवरण और आकार के आधार पर किया जाता है तो एक ही ग्रन्थ की विभिन्न आवृत्तियाँ भिन्न स्थानों पर रखी जावेंगी। इन गुणों से ग्रन्थों को अनुकूल क्रम में स्थायित्व तो प्रदान किया ही नहीं जा सकता। पुस्तक का विशिष्ट विषय ही उसका एक ऐसा गुण है जिसमें अनुकूल क्रम व्यवस्थित किये जाने तथा स्थायित्व प्रदान किये जा सकने की क्षमता है।

ग्रंथकार के नाम से उसकी रचनाओं को रखने का विचार उठना भी संगत ही है। इससे पाठकों को विशेष लाभ भी होता है क्योंकि पाठक अधिकतर ग्रंथकार के नाम से परिचित होते हैं। ग्रंथालय व्यवस्थापन के लिए प्राचीन समय से लेखक के नाम का प्रयोग होता आया है। आज भी अनेक ग्रन्थालयों में इसका प्रयोग किया जाता है। हम किसी भी प्रकार ग्रंथों को अनुकूल क्रम में रखें ग्रन्थकार का नाम विस्मृत नहीं कर सकते। परन्तु ग्रंथकार के नाम से भी हम किसी प्रकार अथाह ग्रंथ सागर में वर्ग-निर्माण कर उनकी व्यवस्था में ही सफल हो सकते हैं। ग्रंथालय पंचसूत्र का पालन करने में फिर भी सफल न होंगे क्योंकि यदि पाठक ग्रंथकार के नाम से अनभिज्ञ है और ग्रन्थ के नाम से ही पुस्तक माँगता है तो उपर्युक्त व्यवस्था के होने पर हम पाठक की आवश्यकता पूर्ण करने में सफल न हो सकेंगे।

उपर्युक्त व्यवस्था के अतिरिक्त हम ग्रंथ नाम से पुस्तकें रख सकते हैं और इस प्रकार भी एक क्रम उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार एक लाभ तो अवश्य होगा कि एक ही ग्रंथ की अनेक प्रतियाँ एवं सम्पुट एक ही स्थान पर रखी जावेंगी परन्तु एक ही ग्रन्थकार की विभिन्न रचनायें पृथक् हो जावेंगी। उनको एक स्थान पर व्यवस्थित करने का और कोई अन्य रास्ता ग्रंथ नाम से पुस्तकें रखने में नहीं निकाला जा सकता। साथ ही भिन्न ग्रंथकारों के एक ही नामवाले ग्रंथ एक में मिल जायेंगे। पुनश्च यदि पाठक को ग्रंथ का नाम नहीं मालूम है या कोई किसी ग्रन्थकार पर

या विषय पर विशेष अध्ययन करना चाहता है और उस ग्रंथकार की समस्त रचनाएँ एक ही स्थान पर चाहता है या एक साथ ही लेना चाहता है तो प्रत्येक ग्रन्थ के लिए उसे पृथक्-पृथक् समय नष्ट करना पड़ेगा अन्यथा उसे निराशामात्र प्राप्त होगी।

आजकल अन्वेषण एवं गम्भीर अध्ययन या ऋषिअर्चन में ग्रन्थ नाम अथवा ग्रंथकार के नाम का उतना अधिक महत्त्व नहीं जितना ग्रंथ के विषय का। तात्पर्य यह है कि ग्रन्थ का उपयोग उसमें सन्निहित विचारों के लिए किया जाता है न कि उनके नाम, रंग, आकार अथवा ग्रन्थकार के कारण। अतएव इस उपयोग को अपने लक्ष्य में रखते हुए हमें विषय के आधार पर वर्गीकरण करना होता है।

विशिष्ट विषय पर ग्रन्थ चाहनेवाले पाठक को ग्रंथालय तभी सहायक या लाभप्रद सिद्ध हो सकता है जब विशिष्ट विषयों के समस्त ग्रन्थ एक ही वर्ग के फलक पर एक ही स्थान पर रखे गये हों। यदि इन्हें भाषा और ग्रन्थ के प्रकाशन के आधार पर पुनः विभक्त कर दिया जावे तो अति उत्तम होगा। दूसरे शब्दों में स्थान वर्गीकरण और ग्रन्थ व्यवस्थापन पाठक की प्रत्यक्ष और परोक्ष रुचि को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए।

अतएव पुस्तक को विशिष्ट विषय के अनुसार करना ही ग्रंथालय वर्गीकरण का ध्येय है। एक निश्चित योजना के अनुसार विशिष्ट विषयों को क्रमसंख्या की कृत्रिम भाषा में परिणत करना ही ग्रंथालय वर्गीकरण का उद्देश्य है। उपर्युक्त व्याख्या में विषय की विवेचना के लिए अनेक विशिष्ट शब्दों और पदों का विशेष अर्थ में प्रयोग किया गया है। उन शब्दों तथा पदों का अधिक स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक है क्योंकि साधारण अर्थ और उनके उपयोग में सम व्यापकत्व नहीं है।

पुस्तक का विशिष्ट विषय—पुस्तक का विशिष्ट विषय ज्ञान का वह विभाग होता है जिसके सामान्याभिधान का आरोह तथा वितति का अवरोह ग्रन्थ में सन्निहित विचारों के सामान्याभिधान और वितति के

सम व्यापक होता है। पुस्तकाध्यक्ष को विषय निर्धारण के लिए तार्किक निर्णय की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए श्री ई० सी० बेकर के ग्रन्थ 'पक्षी' को लीजिए। यह पक्षियों के सम्बन्ध में व्यापक ग्रन्थ नहीं है। इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। यह ग्रंथ पक्षियों की सम्पूर्ण समस्याओं से सम्बन्धित नहीं है। इस ग्रन्थ में केवल पक्षियों का नैसर्गिक इतिहास वर्णित किया गया है। साथ ही समस्त पक्षियों का नैसर्गिक इतिहास भी नहीं लिखा गया; केवल भारतीय पक्षियों का ही वर्णन किया गया है। अतएव यदि ग्रंथ का विशिष्ट विषय 'पक्षी' कहा जाय तो इसका सामान्याभिधान पुस्तक में संग्रहीत विचारों के सामान्याभिधान से कहीं कम और वितति कहीं अधिक है। वास्तव में 'भारत के पक्षियों का नैसर्गिक इतिहास' पुस्तक का विशिष्ट विषय है। तात्पर्य यह है कि पुस्तक के विशिष्ट विषय के निर्धारण में पुस्तकाध्यक्ष को तार्किक निर्णय करना आवश्यक हो जाता है। साधारण पाठकों या पुस्तकालय विज्ञान का ज्ञान न रखनेवाले व्यक्ति विशिष्ट विषय का निर्णय करने में निःस्वार्थ रहकर सफल नहीं हो सकते हैं।

क्रमसंख्याओं की कृत्रिम भाषा—किसी प्रकार के भावों के प्रकाशन हेतु हम भाषा का प्रयोग करते हैं। परन्तु ग्रन्थालय में हम भाषा-मात्र का प्रयोग कर ग्रंथों की व्यवस्था का यन्त्रीकरण नहीं कर सकते। यदि यह सम्भव भी हो तो हमें ऐसी सांकेतिक भाषा की आवश्यकता होती है जो संक्षिप्त रूप में हमारे भावों को व्यक्त कर सके। अतएव हम क्रम संख्याओं की कृत्रिम भाषा का उपयोग करते हैं। यह भाषा क्रम संख्याओं से गणित के सूत्रों के आधार पर बनती है। संख्याएँ साधारण नहीं क्रमबद्ध होती हैं। ग्रंथ व्यवस्थापन के कार्य का यंत्रीकरण करने के लिए ही हम क्रमिक संख्याओं की कृत्रिम भाषा का प्रयोग करते हैं।

डा० शि० रा० रंगनाथन ने अपनी पुस्तक में जार्ज पंचम की वेम्ब्रेज़ प्रदर्शनी का उल्लेख किया है। जहाँ अतिथियों के आधिक्य के कारण क्रमसंख्याओं की सहायता से उनके बैठने की व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक

अतिथि का एक कृत्रिम भाषा में नाम था। दूसरे शब्दों में प्रत्येक अतिथि को एक क्रमिक संख्या दे दी गई थी। उस क्रमसंख्या के आधार पर ही प्रत्येक अतिथि आकर अपने-अपने स्थान पर बैठा और किसी भी प्रकार की पूछताछ या आवश्यकता-निवारण के लिए उसी क्रम-संख्या का प्रयोग किया गया। इस प्रकार प्रबन्ध में किसी प्रकार की अव्यस्था नहीं हुई। अधिक व्याख्या के लिए यदि श्री विलियम जेम्स को ६,१२,२२ क्रमसंख्या दी गई तो उनके बैठने की व्यवस्था छठवें कमरे की बारहवीं पंक्ति के बाईसवें स्थान पर की गई थी। अब यदि किसी ने श्री विलियम जेम्स को बुलाना चाहा तो वह केवल उनके नाम से वहाँ उन्हें न पा सकेगा क्योंकि अतिथियों की कोई गिनती तो थी नहीं। स्वयंसेवक को ६,१२,२२ संख्यावाले अतिथि को बुलाने के लिए कहने पर उन्हें आसानी से पाया जा सकता था। अन्य कोई मार्ग न था।

इसी प्रकार ग्रंथ व्यवस्थापनार्थ आवश्यक सिद्धान्तानुसार हम इच्छित क्रम का निर्माण कर लेते हैं। पुनश्च क्रमसंख्याओं की कृत्रिम भाषा द्वारा अभिप्रेत नियन्त्रण के लिए इस क्रम का यंत्रीकरण कर देते हैं। वर्गीकरण की योजनानुसार निर्माण की गई वर्गांक पद्धति ही को कृत्रिम भाषा कहते हैं।

विशिष्ट विषयों को कृत्रिम भाषा में प्रगट करनेवाले अवयवों को वर्गांक कहते हैं। एक ही विशिष्ट विषय पर अनेक ग्रन्थ होते हैं या एक ही वर्गांक वाले विशिष्ट विषय पर अनेक ग्रन्थ होते हैं। अतएव उन्हें विशिष्टता प्रदान करने के लिए ग्रंथांक का प्रयोग किया जाता है। ग्रन्थांक का निर्माण ग्रन्थकार के नाम, ग्रंथ नाम, ग्रन्थ में प्रयुक्त भाषा या प्रकाशन तिथि के आधार पर किया जाता। डा० रंगनाथन ने प्रकाशन की तिथि व भाषा इत्यादि का प्रयोग किया है। ग्रंथांक और वर्गांक दोनों को मिलाकर स्थानांक या क्रामक संख्या बनती है। इसी क्रामक संख्या के आधार पर ग्रन्थ व्यवस्थापन किया जाता है।

वर्गीकरण के भिन्न प्रकार—ज्ञान वर्गीकरण एल० एम० हेड के अनुसार ज्ञान के किसी भी क्षेत्र का वर्गीकरण करने के लिए उपयुक्त, परन्तु जिसका ग्रंथ विभाजन के लिए सामान्य वर्ग, रूपवर्ग, विभाग, संकेतन तथा अनुक्रमणिका के सहयोग बिना उपयोग न किया जा सके ऐसा वर्गीकरण ज्ञान वर्गीकरण कहलाता है। सेअर्स के अनुसार ग्रन्थालय वर्गीकरण ज्ञान का वर्गीकरण है। ज्ञान से उद्भूत भाव ही ग्रन्थों में संग्रहीत होते हैं। अतएव ग्रंथ का वर्गीकरण एक प्रकार से ज्ञान का वर्गीकरण होता है। इतना अवश्य है कि ज्ञान वर्गीकरण का ग्रन्थालय वर्गीकरण में प्रयोग करने के लिए हमें अनेक अन्य साधनों का सहारा भी लेना पड़ता है।

वर्गीकरण—वांग्मय वर्गीकरण तथा ग्रंथ व्यवस्थापन के लिए प्रयुक्त फलक वर्गीकरण दोनों मिलकर ग्रंथ वर्गीकरण कहलाते हैं। ग्रंथों तथा अन्य साहित्यिक सामग्रियों के वर्गीकरण सूचियों तथा वांग्मय तालिकाओं में समायोजन हेतु वांग्मय वर्गीकरण का प्रयोग किया जाता है। ग्रंथालय के फलकों पर ग्रन्थ व्यवस्थापनार्थ जिस मान्य पद्धति का प्रयोग किया जाता है उसे फलक वर्गीकरण कहते हैं। इन दोनों वर्गीकरणों के संयोग से ग्रन्थ वर्गीकरण बनता है या दूसरे शब्दों में ग्रन्थ वर्गीकरण में वांग्मय वर्गीकरण तथा फलक वर्गीकरण दोनों का ही प्रयोग किया जाता है।

प्राकृतिक तथा कृत्रिम वर्गीकरण—तर्कशास्त्रियों ने दो प्रकार के वर्गीकरण माने हैं। एक तो प्राकृतिक या वैज्ञानिक वर्गीकरण और दूसरा अपने विशिष्ट उद्देश्य के निमित्त निर्मित कृत्रिम वर्गीकरण। वैज्ञानिक (प्राकृतिक) वर्गीकरण विषय का साधारण ज्ञान प्राप्त करने हेतु, समानता के बहुसंख्यक आवश्यक अंशों के आधार पर विषयों के एकत्रीकरण को कहते हैं। इसे साधारण वर्गीकरण भी कहते हैं क्योंकि हमारा उद्देश्य भी विषयों के सम्बन्धों से साधारण ज्ञान प्राप्त करना ही होता है। इसे प्राकृतिक वर्गीकरण इसलिए कहते हैं कि समानता के बहुसंख्यक अंश

प्रकृति में विद्यमान माने जाते हैं। वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रकृति में, मानव स्वभाव में तथा हमारे दैनिक क्रियाकलापों में निसर्गतः विद्यमान है।

कृत्रिम वर्गीकरण या विशेष वर्गीकरण किसी विशेष लक्ष्यपूर्ति हेतु अचानक संकलित समानता के कुछ तथ्यों के आधार पर विषयों के मानसिक एकत्रीकरण को कहते हैं। इसे विशेष वर्गीकरण इसलिए कहते हैं क्योंकि कृत्रिम वर्गीकरण का किसी विशेष उद्देश्य के लिए ही निर्माण किया जाता है। यह प्राकृतिक या नैसर्गिक नहीं होता क्योंकि हम समानता के नैसर्गिक तथ्यों का उल्लङ्घन करते हैं और अपने वर्गीकरण के लिए अपनी आवश्यकतानुसार कुछ विशेष समानताओं को आधार बनाते हैं।

कृत्रिम तथा नैसर्गिक वर्गीकरण को अधिक स्पष्ट करने के लिए उदाहरणार्थ पौधों का वर्गीकरण चिकित्सक, कृषिशास्त्री, वनविभागाधिकारी तथा वनस्पतिशास्त्री प्रायः सभी करते हैं। चिकित्सक उनके वर्गीकरण के लिए उनकी औषधि तत्त्व शक्ति का सहारा लेता है। कृषिशास्त्री उनका जीवभोज्यपदार्थ के रूप में वर्गीकरण करता है। इसी प्रकार बनविभागाधिकारी वनसम्पत्ति के रूप में उनका वर्गीकरण करता है। इस प्रकार सभी अपने-अपने उद्देश्य के अनुकूल वर्गीकरण करते हैं और वर्गीकरण के लिए वैसी ही विशेषता का प्रयोग करते हैं। ये सभी नैसर्गिक तत्त्वों का उल्लङ्घन कर अपने-अपने स्वार्थ के अनुकूल विशेष तथ्यों या गुणों का आधार लेकर वर्गीकरण करते हैं। वनस्पतिशास्त्री उनके नैसर्गिक तथ्यों के आधार पर उनकी उत्पत्ति, प्रकृति एवं साधारण गुणों की सहायता से वर्गीकरण करता है। अतएव वनस्पतिशास्त्री के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी शास्त्रियों द्वारा किये गये वर्गीकरण कृत्रिम वर्गीकरण कहे जावेंगे।

——

द्वितीयोच्छ्वास

विभाजन की प्रणाली

वर्गीकरण समग्र ज्ञानक्षेत्र या उसके किसी विशिष्ट भाग का पारिभाषिक शब्दों में प्रकथन है। वर्गीकरण अनुसूची समग्र ज्ञानक्षेत्र की सूचीकृत तालिका होती है। वर्गीकरण निर्माता अपनी तालिका में वर्ग, विभाग तथा उपविभागों के लिए सर्वोत्तम समान पदों की खोज करता है। वह प्रत्येक पद को अनेक अनुसमूहों में विभाजित करता है। इन्हीं को विभाग कहते हैं। प्रत्येक विभाग फिर उपविभागों में विभाजित किया जाता है। इन्हें खण्डों में तथा खण्डों को उपखण्डों में विभाजित किया जाता है। इस प्रकार वर्गीकरण में......।

वर्ग
विभाग
उपविभाग
खण्ड
उपखण्ड
..... इत्यादि होते हैं।

डा० दीवानचन्द्र के शब्दों में वर्गीकरण विभिन्न विविध विषयों को उनके समगुणों से समुदायों में व्यवस्थित करता है। यह विभाजन से अत्यन्त घनिष्ठतम सम्बन्धित है। अनेक तो इन दोनों को एक ही मानते हैं। फ़ालर वर्गीकरण को विभागों और उपविभागों की शृङ्खला कहता है। यद्यपि विभाजन में हम व्यापकता से संकीर्णता की ओर बढ़ते हैं। वर्गीकरण में हम व्यापकत्व की ओर अग्रसर होते हैं। वेन के अनुसार यदि हम इसे समष्टि कहें तो अति उत्तम होगा।

वर्गीकरण प्रजाति को जाति में विभाजित कर देने से कहीं गुरुतर कार्य है। मूलतः दोनों विधियाँ एक सी ही हैं। दोनों ही में हम समगुणों वाली वस्तुओं को एकत्रित कर लेते हैं। और विषम गुणोंवाली वस्तुओं को दोनों ही में पृथक् कर दिया जाता है। परन्तु इतना होते हुए भी दोनों ही तत्सम नहीं हैं। यद्यपि अन्योन्याश्रित रूप से सम्बन्धित अवश्य हैं। वर्गीकरण और विभाजन में उदमन और निगमन का अंतर है। विभाजन को निगमन वर्गीकरण कहा जाता है। विभाजन एक विश्लेषणात्मक प्रणाली है क्योंकि यह सदैव व्यापकत्व से संकीर्णत्व की ओर चलता है। वर्गीकरण में सबको मिलाकर वर्ग-निर्माण किया जाता है जब कि विभाजन में एक को अनेक में विभाजित किया जाता है।

किसी भी समय जब वर्गीकरण पद्धति का निर्माण किया जाता है यह सम्भव नहीं होता कि भूत, वर्तमान और भविष्य सभी के ज्ञानक्षेत्रों का अनुसूचीकरण किया जा सके। यद्यपि पद्धति निर्माण के बाद, प्रत्येक क्षण अन्वेषण या खोज के फलस्वरूप नवीन विषय उत्पन्न होने की आशंका रहती ही है। ऐसी दशा में उस नवीन विषय को अन्य विषयों के बीच उचित स्थान देने का भार वर्गीकरण करते समय पुस्तकाध्यक्ष पर आता है। अतएव पुस्तकाध्यक्ष को भी वर्गीकरण तथा विभाजन की प्रणाली का पूर्वज्ञान आवश्यक हो जाता है। वर्गीकरण निर्माता विभाजन के सिद्धान्तों के आधार पर अपनी अनुसूची तैयार करता है। अनुसूचीकृत प्रत्येक विभाग को एक संकेत शब्द दे दिया जाता है। वर्गीकरण करनेवाला पुस्तकाध्यक्ष ग्रंथों को विविध विभागों में संग्रहीत कर देता है। प्रत्येक ग्रंथ पर उसके विभाग से सम्बन्धित कृत्रिम भाषा का संकेत शब्द अंकित कर दिया जाता है।

तर्कशास्त्रियों के प्राचीन ग्रंथों में जो वर्गीकरण पाया जाता है। अधिकतर विभाजन से ही सम्बन्धित या विभाजन ही है। इसका उदाहरण वंशवृक्ष से दिया गया है। जिसमें प्रत्येक बार प्रजाति से एक भेद ढूँढ़कर जाति व्युत्पन्न की जाती है। इस प्रकार प्रत्येक प्रजाति केवल दो

जातियों में विभाजित होता है। इनमें से एक जाति विभेदयुक्त तथा दूसरी विभेदहीन होती है। परन्तु यह द्वन्दभाजन प्रणाली ग्रंथालय वर्गीकरण के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

वर्गीकरण अनुसूची के निर्माण में यह प्रयास किया जाता है कि एक साथ सभी समानपदी वर्ग रखे जा सकें अर्थात् एक साथ एक प्रजाति से समस्त सम्भावित समानपदी जातियाँ व्युत्पन्न कर ली जाती हैं। द्वंद्व भाजन प्रणाली में सदैव प्रजाति में नवीन गुण खोजकर एक साथ दो जातियाँ व्युत्पन्न की जाती है जो वर्गीकरण में कदापि नहीं किया जा सकता। वर्गीकरण के लिए विषय में किसी गुण को खोजकर जो उस वर्ग के सभी ग्रन्थों में किसी भी मात्रा में किसी भी प्रकार पाई जाती हो, वर्गीकरण का मापदण्ड बना लिया जाता है। डा० रंगनाथन ने शिक्षाशास्त्र को शिक्षार्थी अवस्था तथा शिक्षा की समस्या को मापदण्ड बनाकर या विभाजन के लिए विशेषता के रूप स्वीकार कर शिक्षाशास्त्र के विषय क्षेत्र का वर्गीकरण किया है। इस प्रकार अवस्था की विशेषता के आधार पर एक ही प्रजाति से······।

बाल्यावस्था

प्रारम्भिक अवस्था

माध्यमिक अवस्था

उच्चस्तरीयावस्था

वयस्क अवस्था

इत्यादि।

और समस्या को विशेषता मानकर······।

पाठ्यक्रम

शिक्षण पद्धति

शिक्षालय भवन

इत्यादि जातियों को व्युत्पन्न किया है। दशमलव वर्गीकरण में श्री मलविल डेवी ने भी उपयुक्त मापदण्डों या विशेषताओं को आधार मान-

कर शिक्षाशास्त्र को निम्न बिभागों या जातियों में विभाजित किया है।

शिक्षण
प्रारम्भिक शिक्षा
माध्यमिक शिक्षा
वयस्क शिक्षा
पाठ्य क्रम
नारी शिक्षा
धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा
विद्यालय तथा विश्वविद्यालय
इत्यादि।

प्रत्येक पद जब एक से अधिक वस्तुओं या विचारों को प्रकट करता है तो वह स्वयं प्रजाति बनकर जातियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक वर्गपद प्रजाति है और इसे जातियों में विभाजित किया जा सकता है।

विज्ञान प्रजाति है और इसे गणित, नक्षत्रविद्या तथा भौतिक विज्ञान इत्यादि में विभाजित किया जा सकता है। भौतिक विज्ञान अपने विभागों या जातियों के सम्बन्ध में प्रजाति बन जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक जाति वर्गीकरण करते समय प्रजाति बन जाती है। वह मूलतत्व जिससे प्रजाति को जातियों में विभाजित करते हैं, विभेद है। जिसे हम प्रजाति का गुण या विशेषण मान सकते है।

दूसरे शब्दों में वर्गीकरण की प्रक्रिया वितति तथा सामान्याभिघान पदों के बोध पर निर्भर करती है। एक ही पद पर दृष्टिपात करने की ये दो विधियाँ मानी जा सकती हैं। पद की वितति वे सभी उपपद, विभाग या जातियाँ होती हैं जिनको यह प्रकट करता है। सामान्याभिघान प्रजाति का गुण या उसका स्वबोध माना जा सकता है। व्यापक वितति-

वाले पदों का सामान्याभिधान सदैव कम होता है। व्यापक विततिवाले पद का अर्थ हम आसानी से प्रकट नहीं कर सकते। विज्ञान पद व्यापक विततिवाला पद है परन्तु इसका सामान्याभिधान कम है क्योंकि इसका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि इसका तात्पर्य आसानी से प्रकट नहीं किया जा सकता। हम इसकी परिभाषा आसानी से नहीं दे सकते हैं।

वर्गीकरण की अनुसूची बनाने में हम पहले समग्र ज्ञानक्षेत्र इसकी बड़ी जातियों में या वर्गों में विभाजित करते हैं। पुनः यही वर्ग प्रजाति बन जाते हैं और इन्हें पुनः विभाजित किया जाता है। बार-बार इसी प्रकार वर्गीकरण की प्रक्रिया चलती रहती है जब तक कि फलित जातियों को विभाजित किया जा सकना असम्भव नहीं हो जाता।

दशमलव वर्गीकरण में श्री मलविल डेवी ने व्यापक ज्ञानक्षेत्र से वर्गीकरण प्रारम्भ किया है जिसे वे सर्व वर्ग या सामान्य वर्ग या समान्य की संज्ञा देते हैं। इस व्यापक ज्ञानक्षेत्र को उन्होंने सामान्य, दर्शन, धर्म, समाज शास्त्र, भाषा विज्ञान इत्यादि दस प्रमुख से वर्गीकरण की वर्गों में व्यवस्थित किया है। इसे डा० रंगनाथन के शब्दों में प्रथम व्यवस्था कह सकते हैं। पुनः ये प्रजाति बनकर अन्य जातियों में व्यवस्थित किये जाते हैं। इसी प्रकार डा० रंगनाथन ने समग्र ज्ञानक्षेत्र को कुल २९ उनतीस प्रमुख वर्गों में व्यवस्थित किया है। इसे द्विबिन्दु वर्गीकरण की प्रथम व्यवस्था कहा जायगा।

विभाजन के कतिपय नियम—(अ) विभाजन केवल एक गुण, विशेषता या सिद्धान्त के आधार पर होना चाहिए। विभाजन का सिद्धान्त जितना सम्भव हो नैसर्गिक तथा मौलिक होना चाहिए। सदैव अपने उद्देश्य के अनुकूल सिद्धान्त या गुण का निर्वाचन श्रेयस्कर होता है। क्योंकि एक ही विषय को अनेक प्रकार से व्यवस्थित किया जा सकता है।

(ब) विभाजन सदैव व्यापक वितति और कम सामान्याभिधान से कम वितति और अधिक सामान्याभिधान की ओर अग्रसर होता है। यह

प्रक्रिया क्रमशः तथा एकसूत्रगत होनी चाहिए। श्रृंखला या व्यवस्था का यह क्रम कहीं भी भ्रष्ट न होना चाहिए।

(स) ज्ञानक्षेत्र के सभी विभाग तथा उपविभाग योग रूप में समस्त ज्ञानक्षेत्र के समान या समव्यापक होना चाहिए।

(द) विभाजन के लिए निर्वाचित सिद्धान्त या गुण या विशेषताएँ दृढ़ होने चाहिए दृढ़ता न होने से ये उद्देश्य की पूर्ति में सहायक तो हो ही नहीं पाते असंगति भी उत्पन्न कर देते हैं।

वर्गीकरण के २८ सिद्धान्त

- वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त
  - ७
    - विभेद का सिद्धांत
    - समवाय का सिद्धांत
    - सुसंगति का सिद्धांत
    - सुनिश्चितता का सिद्धांत
    - स्थायित्व का सिद्धांत
    - सम्बद्ध अनुक्रम का सिद्धांत
    - दृढ़ता का सिद्धांत
  - ४
    - निःशेषता का सिद्धांत
    - अपवर्जिता का सिद्धांत
    - अनुकूल क्रम का सिद्धांत
    - संगत क्रम का सिद्धांत
  - २
    - सामान्याभिधान का सिद्धांत
    - अपरिवर्तनशीलता का सिद्धांत
  - ४
    - प्रचलन का सिद्धांत
    - निर्देशन का सिद्धांत
    - प्रसंग का सिद्धांत
    - संयम का सिद्धांत
  - १
    - सापेक्षता का सिद्धांत
- ज्ञान वर्गीकरण के विशेष सिद्धान्त
  - ३
    - अनुविन्यास में ग्राहिता का सिद्धांत
    - शृङ्खला में ग्राहिता का सिद्धांत
    - स्मरणीयता का सिद्धांत
- ग्रन्थ व्यवस्था तथा ग्रन्थालय वर्गीकरण के विशेष सिद्धान्त
  - ७
    - आंशिक समवबोध का सिद्धांत
    - दृष्टिकोण का सिद्धांत
    - स्थानीय परिवर्तन का सिद्धांत
    - शास्त्रीय सिद्धांत
    - सामान्य उपविभाग का सिद्धांत
    - व्यवच्छेदकता का सिद्धांत
    - व्यष्टिकरण का सिद्धांत

तृतीयोच्छ्वास

अनुकूल क्रम का सारभूत सिद्धाँत

प्रसिद्ध ग्रंथालय शास्त्री विलस ने अपनी पुस्तक "पुस्तकालयों में ज्ञान की व्यवस्था" में यह विचार व्यक्त किया है कि वर्गीकरण का क्रम वैज्ञानिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अनुकूलता पर आधारित होना चाहिए। किसी भी साधारण से साधारण क्षेत्र का कर्मचारी अपने-अपने उद्देश्य के अनुकूल कार्य करता है। हम जिस समय ग्रंथ व्यवस्था की बात करते हैं हमारे सामने अनेक अनधिवासनशील ग्रंथ समस्या बनकर आ जाते हैं। हमें सदैव ऐसे ग्रंथों की ही व्यवस्था नहीं करनी पड़ती जो सीधे सीधे किसी विशेष ज्ञान क्षेत्र से सम्बन्धित हो। कुछ ग्रंथ बहुत ही विस्तृत ज्ञान क्षेत्र से सम्बन्धित होते हैं और कुछ बहुत ही संकीर्ण ज्ञान क्षेत्र से। कुछ में सम्बद्ध विषय की साधारण व्याख्या होती है और कुछ में विशेष तथा वैज्ञानिक। कभी-कभी तो पुस्तक के उच्छ्वास विषय-क्षेत्र के बहुत ही बाहर चले जाते हैं। इन ग्रंथों को अनुकूल क्रम में व्यवस्थित करने की समस्या बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। अतएव अनुकूल क्रम का सिद्धांत वर्गीकरण का आधारभूत सिद्धांत माना जाता है।

विशिष्ट विषयों को अनुकूल क्रम में व्यवस्थित करने के लिए अनेक-अनेक सिद्धांतों का अनुसरण करना पड़ता है। विशिष्ट विषयों के वर्गों की व्यवस्था कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर ही होनी चाहिए। निरंकुश अनुकूल क्रम में भी व्यवस्था नहीं की जा सकती क्योंकि स्थायित्व इसके द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता। डा० रंगनाथन, वर्नार्ड आई पामर तथा वरविक सेअर्स ने इसके लिए कुछ सिद्धांतों का उल्लेख किया है।

(क) वितति अवरोह का क्रम
(ख) मूर्तवृद्धि का क्रम
(ग) उद्विकासी क्रम
(घ) आनुतिथ क्रम
(च) भौगोलिक क्रम
(छ) आप्त क्रम
(ज) इयत्तात्मक क्रम

वितति अवरोह क्रम

इस क्रम की व्याख्या के लिए निम्न विषयों पर दृष्टिपात करना है :—

५३७ विद्युत ५३० भौतिक शास्त्र

५३७.५ वैद्युदणिवकी

उपर्युक्त वर्गों को इस प्रकार से भी लिखा जा सकता है ।

उत्तरी अमेरिका के भौगोलिक विशेषता से किये गये विभागों का रेखाचित्र

९७०
उत्तरी अमेरिका : भौगोलिक विशेषता

९७१ कनाडा	९७२ मेक्सिको	९७३ संयुक्त राष्ट्र	९७४ उत्तरी पूर्वी प्रदेश	९७५ दक्षिणी राज्य	इत्यादि

९७२.१ उत्तरी	९७२.२ कैलीफोर्निया	९७२.३ मध्य प्रशान्त राज्य	९७२.४ मध्य मेक्सिको	९७२.५ मेक्सिको घाटी	९७२.६ दक्षिणी खाड़ी के राज्य

९७२.७ दक्षिणी प्रशान्त राज्य	९७२.८ मध्य अमेरिका	९७२.९ पश्चिमी द्वीप

९७२.८१ ग्वाटे माला	९७२.८२ ब्रिटिश होन्डुरस	९७२.८३ होन्डुरस	९७३.४ एल सल्वेडर	इत्यादि

टिप्पणी :— यह एक वितति अवरोह एवं सामान्याभिधान वृद्धिप्रदर्शक व्यवस्था क्रम है ।

५३० भौतिक शास्त्र ५३७ विद्युत

५३७.५ वैद्युदणिवकी

परन्तु इन दोनों व्यवस्थाओं में अनुकूल क्रम नहीं पाया जाता है। अन्तिम व्यवस्था में तो विशिष्ट विषयों का व्यवस्थापन वितति अवरोह क्रम के आधार पर किया गया है। परन्तु पूर्व व्यवस्था में किसी भी प्रकार के क्रम के आधार पर नहीं वरन् निरंकुश व्यवस्था की गई है। व्यवस्था क्रम में क्रमशीलता जिससे विषयों को वितति क्रम में व्यवस्थित किया जा सके आवश्यक हो जाता है। इससे वे साधारण विषय जो विशिष्ट विषयों को अन्तर्विष्ट करते हैं स्वयं विशिष्ट विषयों के पूर्व व्यवस्थित किये जाते हैं। इस प्रकार वितति क्रम के सिद्धान्त को विशिष्टता वृद्धि का सिद्धान्त भी कहा जा सकता है।

दशमलव वर्गीकरण की अनुसूचियों में से ५०० विज्ञान वर्ग की अनुसूची उदाहरणस्वरूप लीजिये। यह वर्ग अत्यन्त विस्तृत है, अनेक विषयों को अन्तर्विष्ट करता है। इसकी वितति व्यापक तथा सामान्याभिधान संकुचित है। उसी अनुसूची में ५१० गणित का विषय विभाग के रूप में आता है। यह विषय विज्ञान से कम विस्तृत, कम विषयों को अन्तर्विष्ट करनेवाला, उससे कम व्यापक वितति तथा अपेक्षाकृत कम संकुचित सामान्याभिधान वाला विषय है। इसी प्रकार यदि हम गणित की अनुसूची में देखते जायें तो क्रमशः कम व्यापक वितति तथा अधिक व्यापक सामान्याभिधान वाले विषय आते जायेंगे।

५०० विज्ञान

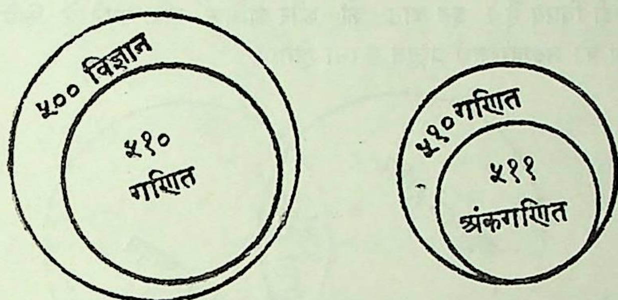
५१० गणित

५११ अङ्कगणित

५११.२ अङ्कसिद्धान्त

इसी क्रम को और अधिक सरलता के साथ वर्णन करने के लिए वृत्तों द्वारा भी इसकी व्याख्या की जा सकती है। उपर्युक्त वर्गों में यदि विज्ञान

का वृत्त अधिक सबसे बड़ा होगा तो गणित का वृत्त उससे छोटा और अङ्कगणित का वृत्त अपेक्षाकृत और अधिक छोटा होगा ।



इस प्रकार वितति अवरोह क्रम से विषयों की व्यवस्था भी अनुकूल क्रम में सहायक होती है। इसे डा० रंगनाथन ने सामान्याभिधान का सिद्धान्त कहा है।

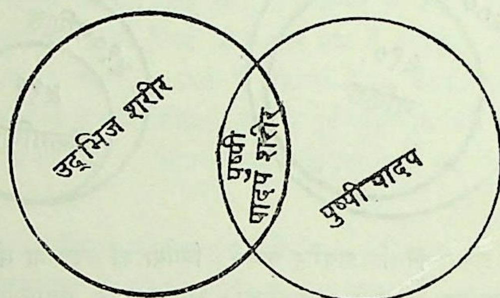
मूर्त वृद्धि का क्रम

यदि दो भिन्न वर्गों में एक वर्ग कम मूर्त तथा दूसरा अधिक मूर्त हो या दूसरे शब्दों में एक वर्ग अधिक निगूढ़ तथा दूसरा कम निगूढ़ हो तो कम मूर्त या अधिक निगूढ़ वर्ग की व्यवस्था प्रथम की जायगी। इस सिद्धांत की व्याख्या करने के लिए निम्न वर्गों का उदाहरण लिया जा सकता है।

उद्भिज शास्त्र
उद्भिज शारीर
पुष्पीपादप शारीर
पुष्पीपादप

उपर्युक्त विषयों की वितति अवरोह क्रम से व्यवस्था नहीं की जा सकती है। यह ठीक है कि पूर्व सिद्धान्तानुसार उद्भिज शास्त्र की व्यवस्था सबसे पहले होगी। इसी सिद्धान्त के आधार पर हमें पुष्पी पादप की व्यवस्था पुष्पीपादप शारीर वर्ग की व्यवस्था के पहले करना पड़ता

है। परन्तु इन वर्गों के बीच उद्भिज शारीर वर्ग की व्यवस्था इस सिद्धांत द्वारा नहीं की जा सकती। इसका प्रमुख कारण यह है कि ये दोनों अति-च्छादी विषय हैं। इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हमें वृत्तों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करना होगा।



उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व सिद्धान्त के अन्तर्गत प्रदत्त उदाहरण की तरह यहाँ वृत्त के भीतर ही वृत्त नहीं रहता अर्थात् यहाँ वितति अवरोह क्रम का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। उपर्युक्त उदाहरण दो अतिच्छादी वृत्तों का युग्म है। उद्भिज शारीर का वृत्त केवल विभिन्न उद्भिज वर्गों को ही नहीं अपितु उद्भिज शारीर के निगूढ़ सिद्धांत और प्रकिया भी अन्तर्विष्ट करता है। परन्तु पुष्पीपादप शारीर इन सबसे सम्बन्धित नहीं है। इस प्रकार पुष्पीपादप वर्ग उद्भिज शारीर वर्ग से अधिक मूर्त अर्थात् कम निगूढ़ है। अतएव मूर्त वृद्धि के सिद्धान्त के अनुसार उद्भिज शारीर वर्ग की व्यवस्था पुष्पीपादप वर्ग के प्रथम की जायगी।

उद्भिज शारीर
  पुष्पीपादप शारीर
    पुष्पीपादप

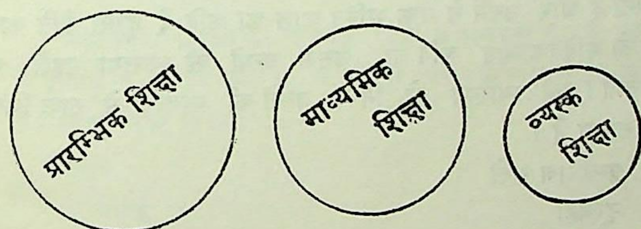
उद्भिज शास्त्र के इन वर्गों की इस प्रकार मूर्त सिद्धांतानुसार अनुकूल क्रम में व्यवस्था की गई है।

उद्विकाशी क्रम

यदि दो वर्ग विकास क्रम की दो अवस्थाओं से सम्बन्ध रखते हैं तो प्रथम अवस्था से सम्बन्ध रखनेवाले वर्ग की व्यवस्था प्रथम तथा दूसरी अवस्थावाले वर्ग की व्यवस्था बाद में की जावेगी।

इस सिद्धांत कीं व्याख्या के लिए हम शिक्षा की अनुसूची से उदाहरण लेते हैं। शिक्षा के वर्ग में नैसर्गिक रूप से प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था माध्यमिक शिक्षा के पहले हो जाती है। क्योंकि दोनों ही वर्ग एक ही विकास क्रम की दो अवस्थाओं से सम्बन्धित हैं।

इसी व्याख्या के स्पष्टीकरण के लिए यदि हम वृत्तों का सहारा ले तो प्रारम्भिक शिक्षा का वृत्त बड़ा, माध्यमिक शिक्षा का वृत्त उससे छोटा और वयस्क या प्रौढ़ शिक्षा का वृत्त अपेक्षाकृत उससे भी छोटा होता है।



यदि विशेषता विकासात्मक क्रम या प्रकृति की है तो वर्गों का क्रम विकासक्रम के अनुकूल होगा। प्राणिशास्त्र की अनुसूची पर दृष्टिपात करने से हमें ऐसे वर्ग मिलते हैं जो जीव विकास क्रम से सम्बन्धित हैं। लगभग सभी वर्गीकरण निर्माताओं ने मुख्यतः कांग्रेस पुस्तकालय, दशमलव तथा द्विबिन्दु वर्गीकरण में इनकी व्यवस्था विकास क्रम के अनुकूल की गई है। समस्त निम्न वर्गों की प्रजीवा से लेकर स्तनिवर्ग तक विकास क्रम के आधार पर ही व्यवस्था की गई है :—

१ अपृष्ठवंशिनः	५९२
२ प्रजीवा	५९३
३ छिद्रिणः	५९३·४
४ आन्तरगुहिनः	५९३·३
५ शल्यचर्माः	५९३·९
६ कृमि	५९५·१
७ चूर्णप्रावराः	५९४
८ संधिपादाः	५९५·२
९ पृष्ठवंशिनः	५९७·५९८
१७ स्तनिवर्ग	५९९

आनुतिथ क्रम

यदि किन्हीं दो वर्गों में से एक दूसरे से पूर्वकालीन है या पूर्व समय से सम्बन्धित है तो उसकी व्यवस्था दूसरे से पूर्व की जायगी। यदि हमें हिन्दी साहित्य के दो महाकवियों की या उनके ग्रन्थों की व्यवस्था करनी है और उसमें से एक भक्ति काल का कवि है दूसरा रीति काल का तो भक्तिकालीन कवि या उसके ग्रन्थों की व्यवस्था पहले की जावेगी। इसी व्याख्या को निम्न ग्रन्थों की व्यवस्था से स्पष्ट किया जा सकता है।

पृथ्वीराज रासो
नूरजहाँ
राम चन्द्रिका
विहारी सतसई
रामचरितमानस

इन ग्रन्थों की अनुकूल क्रम से व्यवस्था करने के लिए इन्हें आनुतिथ क्रम से व्यवस्थित किया जायगा।

पृथ्वीराज रासो
रामचरितमानस

राम चन्द्रिका
विहारी सतसई
नूरजहाँ

भौगोलिक क्रम

ज़ब अनेक भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों की व्यवस्था करनी होती है तो उन्हें अनुकूल क्रम में व्यवस्थित करने के लिए पारस्परिक समीपता के आधार पर रखा जाता है। उदाहरण के लिए निम्न भौगोलिक प्रदेशों को लीजिए :—

मद्रास
करॉंची
वम्वई
पंजाब

भौगोलिक प्रदेशों की उपर्युक्त व्यवस्था अनुकूल क्रम से नहीं हुई है क्योंकि वे परस्पर समीपता के आधार पर नहीं व्यवस्थित किये गये हैं। इनकी निम्न व्यवस्था :—

मद्रास
बम्वई
करॉंची
पंजाब

अथवा

पंजाब
करॉंची
बम्बई
मद्रास

अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल है। इसी प्रकार अन्य भौगोलिक क्रमों की व्यवस्था भी की जाती है।

इयत्तात्मक क्रम

समस्त योगक्रम से सम्बन्ध रखनेवाले वर्गों की व्यवस्था योगक्रम के विकासोन्मुख आधार पर की जानी चाहिए। रेखागणित में स्थान सम्बन्धी वर्गों की व्यवस्था आरोहात्मक क्रम में द्विविन्दु वर्गीकरण में निम्न प्रकार से की गई है :—

रेखागणित
    तल
        त्रिविमा
            चतुर्विमा
                पंचविमा

इसी प्रकार अन्य इयत्तात्मक वर्गों की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

सापेक्षिक क्रम

इस क्रम के अन्तर्गत दो मुख्य क्रमों की व्याख्या की जावेगी :

(अ) वरिम क्रम

(ब) कालक्रम

यदि वर्ग उन नैसर्गिक क्रमों के अनुरूप होते हैं जो दीर्घकाल से होते रहने के अभ्यस्त हो गये हैं तो चाहे वह वरिम क्रम हो या कालक्रम उनकी व्यवस्था उनके अनुकूल की जाती है। धावनी की प्रक्रियाओं का वर्गीकरण करते हुए श्री मलविल डेवी ने अपने दशमलव वर्गीकरण में निम्न व्यवस्था की है :—

चिह्नांकन
    धावन

मंडन
नीलकरण
शोषरण
स्तरीयरण

उपर्युक्त क्रमानुसार ही वस्त्रधावन की प्रक्रिया में धावक निर्दिष्ट काल क्रम से गुजरता है। अतएव वर्गीकरण में अनुकूल क्रम में उनकी व्यवस्था करने लिए यही अभ्यस्त क्रम अपेक्षित है।

इसी प्रकार भाषाविज्ञान में वाक्य रचना का वर्गीकरण करते हुए डा० रंगनाथन ने द्विविन्दु वर्गीकरण में निम्न व्यवस्था की है :—

३	वाक्य रचना
३३	विश्लेषण
३३१	कर्त्ता
३३३	कर्ता के उपासंग
३३५	कर्म
३३६	कर्म के उपासंग
	इत्यादि

उपर्युक्त क्रम ही वाक्य रचना का सही वरिम क्रम है अतएव अनुकूल क्रम से उनकी व्यवस्था के लिए निर्दिष्ट वरिम क्रम ही उपयुक्त है।

आप्त क्रम

आप्तक्रम की व्याख्या के लिए हमें निम्न वर्गों की व्यवस्था पर दृष्टिपात करना है :—

ज्ञान शास्त्र
तर्क शास्त्र

आत्मविद्या
दर्शन शास्त्र

इन वर्गों की व्यवस्था में वितति अवरोह क्रम के आधार पर दर्शन-शास्त्र की व्यवस्था तो थम स्थान पर हो जाती है पर अन्य तीन वर्गों की व्यवस्था किसी भी क्रम से सम्भव नहीं होती है। अतएव इसके लिए हमें आप्त क्रम का ही सहारा लेना पड़ता है।

दर्शन शास्त्र
तर्क शास्त्र
ज्ञान शास्त्र
आत्मविद्या

द्विबिन्दु वर्गीकरण में आप्त क्रम के आधार पर व्यवस्थित किये जाने वाले अनेक वर्ग हैं। गणित, भौतिक शास्त्र, भौमिक शास्त्र, उपयोगी कलायें तथा दर्शन आदि प्रथम व्यवस्था क्रम के वर्ग आप्त क्रम के आधार पर ही व्यवस्थित किये गये हैं।

जटिलता वृद्धि का क्रम

यदि किन्हीं दो सम्बन्धित वर्गों में से एक कम जटिल तथा अन्य अपेक्षाकृत अधिक हो तो व्यवस्था में कम जटिल वर्ग को प्राथमिकता दी जाती है। रेखागणित में द्वितीय घात के चाप कम जटिल तथा अधिक सरल होते हैं। उनकी अपेक्षा घन या तृतीयघात के चाप अधिक जटिल होते हैं। जहाँ द्वितीय घात के चापों की ६ जातियाँ होती हैं, घन या तृतीय घात के चापों की ७२ जातियाँ होती हैं। इसलिए वर्गीकरण अनुसूची में द्वितीय घात के चापों की व्यवस्था घन या तृतीय घात के चापों के पूर्व की गई है।

———

चतुर्थोच्छ्वास

विशेषता तथा उसके सिद्धान्त

वर्गीकरण के समस्त सामान्य सिद्धांत पाँच समूहों में व्यवस्थित किये गये हैं।

(अ) विशेषता।
(ब) अनुविन्यास।
(स) शृंखला।
(द) पारिभाषिक शब्दावलि।
(य) संकेतन।

जब हम किसी सत्व का विभाजन करने लगते हैं तो सबसे पहले उस सत्व की अपनी आवश्यकतानुकूल विशेषतायें ढूँढ़नी पड़ती हैं जिनके द्वारा वर्ग या सत्व के उपयुक्त विभाग किये जा सकें। विशेषताओं के सम्बन्ध में श्री रंगनाथन तथा बरविक सेअर्स ने सात सिद्धांतों का उल्लेख किया है। उनकी व्याख्या के पहले हम ऊपर लिखे गये दो पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करेंगे।

सत्व

सत्व एक वर्तमान, मूर्त या भावनात्मक अस्तित्व है, वस्तु है या विचार है। प्रत्येक वर्तमान, मूर्त या भावनात्मक वस्तु या विचार सत्व है। प्रत्येक वर्ग एक सत्व है जिसमें विशेषतायें ढूँढ़कर उसका विभाजन किया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न विभाग, उपविभाग या खण्ड भी एक सत्व हैं क्योंकि वे भी वर्तमान मूर्त या भावनात्मक वस्तु या विचार होते हैं।

गुण

सत्व का कोई लक्षण या धर्म गुण कहलाता है। पुस्तक का विषय, रंग, रूप, लेखक एवं भाषा उसके गुण हैं। व्यक्ति का रूप, रंग, आकार एवं वेश उसका गुण है। यह गुण अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। दो पुस्तकों के गुण जहाँ तक उनके विषय का सम्बन्ध है एक हो सकते हैं परन्तु उनके रूप, रंग, भाषा और लेखक इत्यादि गुणों में विभेद हो सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति का आकार या उसकी लम्बाई एक हो सकती है परन्तु रूप, रंग तथा नाम इत्यादि अनेक अन्य विशेषताओं में विभेद हो सकता है। इसी प्रकार अन्य सत्वों के गुणों या लक्षणों में भी समानता तथा असमानता हो सकती है।

उस गुण या गुण समूह को विशेषता कहते हैं जिसकी सहायता से किसी वर्तमान, मूर्त या भावनात्मक सत्व की समानता या असमानता निर्धारित की जा सके। सत्व (जिसे हम अपनी व्याख्या में वर्ग कहेंगे) की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर हम उसका वर्गीकरण करते हैं। विशेषताओं के सम्बन्ध में श्री बरविक सेअर्स तथा डा० रंगनाथन ने निम्न सात सिद्धांतों का उल्लेख किया।

विभेद का सिद्धांत :—विभेद का सिद्धांत बतलाता है कि किस प्रकार मुख्य वर्गों से अनुरूप विभेदात्मक विशेषताओं की सहायता से उपवर्गों तथा विभागों की उत्पत्ति होती है और किस प्रकार यही लक्षण हमें समान वस्तुओं के प्रत्येक विभाग, उपविभाग, खण्ड और उपखण्डों में व्यवस्थित करने में सहायक होते हैं जब तक फिर अन्य विभागों की उत्पत्ति असम्भव न हो जाय। अर्थात् जो विशेषता हम वर्गीकरण में प्रयोग करें वह ऐसी हो जिससे विभेद किया जा सके। वर्गीकरण में ऐसी विशेषता का ही प्रयोग किया जाना चाहिए जो एक वर्ग को कम से कम दो भागों में अवश्य विभाजित करें।

श्री बरविक सेअर्स ने लिखा है कि वर्गीकरण विज्ञान समूहों या ज्ञानक्षेत्र के प्रमुख क्षेत्रों में मुख्य वर्गों से प्रारम्भ होता है। इन वर्गों की विततति विस्तृत और सामान्याभिधान कम होता है। इन मुख्य वर्गों को विभेदात्मक विशेषताओं के योग से हम तब तक विभाजित करते जाते हैं जब तक उनका और विभाजन असम्भव न हो जाय। अर्थात् जिन विशेषताओं का हम विभाजन के लिए उपयोग करते हैं वे विभेदात्मक होती हैं।

द्विविन्दु वर्गीकरण में वर्गों को विभेदात्मक विशेषताओं से विभाजित करने का यह क्रम ठीक से पालन किया गया है। प्रत्येक वर्ग की अनु-सूची से पहले उस वर्ग के विभाजन में प्रयुक्त विशेषताओं का उल्लेख कर दिया गया है। यद्यपि कुछ वर्ग जिनका विभाजन विशेषताओं की सहायता से नहीं हो पाता आप्त क्रम से भी विभाजित किये गये हैं। इसी प्रकार दशमलव वर्गीकरण में भी विभेदात्मक विशेषताओं के आधार पर वर्गों का विभाजन किया गया है। परन्तु वह उतना स्पष्ट तथा नियमानुकूल नहीं जितना द्विविन्दु वर्गीकरण में डा० रंगनाथन ने किया है।

राजनीतिशास्त्र के बिभाजन के लिए दो विशेषताओं का उपयोग किया गया है। एक तो राज्य के प्रकार और दूसरे उसकी समस्यायें। इन्हें निम्न क्रम से प्रयुक्त किया जाता है।

राज्य के प्रकार : समस्यायें या रा : स

पहली विशेषता के आधार पर किये गये विभाजन से निम्न अनुसूची का निर्माण किया गया हैं।

(१) अराजकता।
(२) पुरातनवाद।
(३) सामन्तसाही।

(४) राजतन्त्र ।
(५) अल्प व्यक्तियों की सत्तावाला राज्य ।
(६) जनतंत्र ।
(७) राम राज्य ।
(८) राज्य के स्वरूपों में परिवर्तन ।
(९) विश्व राज्य

दूसरी विशेषता के आधार पर निम्न विभागों की उत्पत्ति हुई ।

(१) निर्वाचन पद्धति
(२) शासकीय संगठन के भाग
(३) शासन के कार्य
(४) राज्य के विभिन्न जनसमूहों से सम्बन्ध
(५) नागरिक अधिकार और कर्तव्य
(६)
(७) समान और सहराज्यों के सम्बन्ध
(८) अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशी सम्बन्ध

अब यदि 'जनतंत्र में निर्वाचन' विशिष्ट विषय के किसी ग्रन्थ को व्यवस्थित करना है तो इन दोनों विशेषताओं के आधार पर सम व्यापक संकेतन की भाषा में उसे व्यवस्थित किया जा सकेगा । यह विशिष्ट विषय राजनीति से सम्बन्धित है अतएव इसका मुख्य वर्ग

व राजनीति

हुआ । विशेषताओं के आधार पर विशिष्ट विषय में जनतंत्र और निर्वाचन दो विषय होते हैं । राजनीतिशास्त्र की राज्य के प्रकार विशेषता के आधार पर पहली अनुसूची से जनतंत्र की वर्ग संख्या

व ६ जनतंत्र

हुई । अब दूसरी विशेषता 'समस्या' के आधार पर दूसरी अनुसूची से निर्वाचन की वर्गसंख्या प्रयुक्त की जायगी ।

व ६ : १ जनतंत्र में निर्वाचन

दोनों अनुसूचियों की वर्ग संख्याओं को मिलाने के लिए द्विविन्दु का प्रयोग किया जाता है जो संयोजक का कार्य करता है।

इसी प्रकार अन्य सभी विषयों में विभेदात्मक विशेषताओं से भिन्न अनुसूचियों का निर्माण किया गया है। दशमलव वर्गीकरण में इस सिद्धांत का स्पष्ट रूप से पालन नहीं किया गया है। जिसके फलस्वरूप अनेक विशेषतायें या तो अतिच्छादी हैं या विशिष्ट विषय की समव्यापक नहीं हैं।

समवाय का सिद्धांत :—कोई भी दो विशेषतायें किसी वर्ग या विभाग को एक ही समान विभागों या उपविभागों में विभाजित न करें अर्थात् कोई भी दो बिशेषतायें सहगामी न होना चाहिए। इसे समवाय का सिद्धांत कहा जाता है।

आयु तथा जन्मतिथि दोनों ही विशेषताओं के आधार पर कक्षा के विद्यार्थियों का विभाजन किया जा सकता है। परन्तु दोनों विशेषताओं से समान विभागों की उत्पत्ति होगी क्योंकि दोनों ही सहगामी विशेषतायें हैं। लेकिन यदि आयु और ऊँचाई के आधार पर वर्गीकरण किया जाय तो वे विद्यार्थियों को दो भिन्न समूहों में व्यवस्थित करेंगी क्योंकि ये दोनों ही विशेषतायें भिन्न तथा असहगामी हैं।

ग्रन्थालय में वर्गीकरण करते समय हम प्रथम संस्करण तथा प्रथम प्रकाशन को तिथि को विशेषताओं के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते। ये दोनों ही प्रायः पुस्तकों को समान विभागों में व्यवस्थित करते हैं। ग्रन्थ के विषय तथा उनके प्रकाशन की तिथि दो विभेदात्मक विशेषतायें मानी जा सकती हैं।

सुसंगति का सिद्धांत—विशेषताओं से सम्बन्धित तृतीय सिद्धांत को सुसंगति या उपयुक्तता का सिद्धांत कहा जाता है। यह सिद्धांत बतलाता है कि जो विशेषतायें वर्गीकरण में विभाजन के लिए प्रयुक्त

की जावें उन्हें वर्गीकरण के उद्देश्य के उपयुक्त होनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप व्यवस्थापन के लिए ग्रन्थ का विषय, भाषा, प्रकाशन की तिथि, लेखक, आवरण, कागज, अक्षर तथा मुद्रण इत्यादि अनेक विशेषताओं का उपयोग किया जा सकता है। परन्तु ये सभी सदैव संगत नहीं हो सकतीं।

ग्रन्थालय में जहाँ हमारा ध्येय पाठक की आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है, ग्रन्थ का विषय, भाषा, प्रकाशन की तिथि तथा, लेखक इत्यादि विशेषतायें संगत हो सकती हैं। परन्तु आवरण, कागज, अक्षर तथा मुद्रण जिनसे पाठक का कोई स्वार्थ नहीं होता, ग्रन्थालय वर्गीकरण के लिए उपयुक्त नहीं हो सकतीं।

कक्षा में शिक्षा के उद्देश्य से विद्यार्थियों के वर्गीकरण के लिए उनकी मातृभाषा बुद्धि तथा ज्ञानस्तर इत्यादि विशेषतायें उपयुक्त हो सकती हैं। परन्तु यदि उनको लम्बाई, रंग, हस्तलेखन या वेशभूषा के आधार पर वर्गीकृत किया जावे तो यह हमारे उद्देश्य के उपयुक्त नहीं होगा।

इस प्रकार ग्रन्थों को भिन्न भिन्न उद्देश्यों के लिए विभाजित करने के लिए भिन्न-भिन्न विशेषताओं का उपयोग किया जायगा। पाठकों को आवश्यकता के अनुसार ग्रन्थ प्रदान करने के लिए दूसरी विशेषतायें, ग्राहकों को बेचने के लिए दूसरी विशेषतायें तथा जिल्द-साज के लिए दूसरी विशेषतायें प्रयुक्त की जावेंगी। इस सिद्धांत को सुसंगति का सिद्धांत कहा जाता है।

सुनिश्चितता का सिद्धांत :—इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक विशेषता पूर्णरूप से निर्धार्य होनी चाहिए। अथवा यों कहना चाहिए कि प्रत्येक विशेषता पूर्णरूपेण निश्चित या सिद्ध करने योग्य होनी चाहिए। प्रमाणस्वरूप लेखक की मृत्युतिथि एक विशेषता है क्योंकि एक दिन एक ही तिथि पर सब लेखकों की मृत्यु की सम्भावना नहीं की जा सकती परन्तु फिर भी ऐसा होना असम्भव नहीं। इस कारण इस विशेषता का

वर्गीकरण के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता। जब तक किसी भी विशेषता के सम्बन्ध में यह सिद्ध न हो जाये या उसकी सुनिश्चितता प्रमाणित न हो जाये तब तक उसका प्रयोग वर्गीकरण के लिए नहीं किया जा सकता।

दशमलव वर्गीकरण में साहित्य का वर्गीकरण करते हुए मुख्य लेखक तथा निम्न कोटि के लेखक विशेषताओं का प्रयोग उचित नहीं कहा जा सकता पर यदि उचित भी हो तो सुनिश्चितता का सिद्धांत खण्डित हो जाता है।

द्विविन्दु वर्गीकरण में डा० रंगनाथन ने इसीलिए लेखक की जन्म-तिथि का प्रयोग किया है जिसे हम वास्तव में निश्चित सिद्ध कर सकते हैं। प्रमाणस्वरूप दशमलव वर्गीकरण में अंग्रेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री ओस्कर वाइल्ड का संकेत की कृत्रिम भाषा में अनुवाद

८२३.८ विक्टोरिया काल

होगा। जो केवल श्री ओस्कर वाइल्ड के लिए ही नहीं अपितु उन सभी उपन्यासकारों के लिए किया जायगा जो विक्टोरिया काल १८३८ से १९०० तक के समय में हुए होंगे। वर्ग संख्या ८२३.८ का तात्पर्य विक्टोरिया काल से है केवल श्री ओस्कर वाइल्ड से नहीं। अतएव दशमलव वर्गीकरण में हम श्री ओस्कर वाइल्ड या उनके साहित्य की सुनिश्चित वर्ग संख्या नहीं दे सकते जो पूर्वरूपेण निर्धार्य हो।

द्विविन्दु वर्गीकरण में आंग्ल साहित्य की वर्ग संख्या द १११ है। साहित्य के वर्गीकरण के लिए निम्न विशेषताओं का प्रयोग किया गया है।

द (भाषा) : (रूप) (लेखक) : (कार्य)

आंग्ल भाषा के उपन्यास या कथासाहित्य की वर्ग संख्या द १११·३ होगी। श्री ओस्कर वाइल्ड सन् १८५६ में उत्पन्न हुए थे अतएव उनकी जन्मतिथि का तिथिअनुसूची के आधार पर ढ ५६ अनुवाद होगा।

इसलिए श्री ओस्कर वाइल्ड की वर्ग संख्या द्विविन्दु वर्गीकरण के आधार पर निम्न होगी।

द १११·३ ढ ५६

उनके किसी भी उपन्यास का वर्गीकरण करने के लिए इसी वर्ग संख्ता के आगे द्विविन्दु लगाकर उसकी क्रमसंख्या डाल दी जायगी। यह संख्या पूर्णरूपेण निर्धार्य होगी। इसमें किसी अन्य लेखक का अन्य ग्रन्थ व्यवस्थित नहीं किया जा सकेगा।

स्थायित्व का सिद्धांत—जब तक वर्गीकरण के लक्ष्य में किसी प्रकार का अन्तर नहीं, किसी भी विषय के वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त विशेषताओं में कोई भी परिवर्तन न होना चाहिए। विशेषताओं में भ्रम उत्पन्न हो जायगा एवं विभागों तथा वर्गसंख्याओं में अप्रत्याशित विभिन्नता हो जायेगी। इसलिए यह सिद्धांत यह बतलाता है कि विशेषताएँ अपरिवर्तनशील होना चाहिए। जब तक कि वर्गीकरण के उद्देश्य में कोई अन्तर न हो पूर्व प्रयुक्त विशेषताओं का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

यह एक पद्धति बन गई है कि पत्रिकाओं का वर्गीकरण दो वर्गों में किया जाय। एक वर्ग में वे पत्रिकाएँ रखी जाती हैं जो विद्वत् परिषदों द्वारा प्रकाशित की जाती हैं और दूसरे वर्ग में वे पत्रिकाएँ जो विद्वत् परिषदों द्वारा नहीं प्रकाशित होतीं। परन्तु पत्रिकाओं के प्रकाशन में प्राय: परिवर्तन हुआ करते हैं अतएव यह विशेषता भी स्थायित्व के सिद्धांत को पूर्ण नहीं करती।

'इंडियन जर्नल आव बोटनी' नामक आंग्लभाषा की पत्रिका का प्रकाशन पहले एक स्वतंत्र संस्था द्वारा होता था। सन् १६२१ में 'बोटेनिकल सोसाइटी' बनने के बाद यह निश्चित हुआ कि यह पत्रिका इस संस्था द्वारा ही प्रकाशित की जाती है और तृतीय वर्ष के दूसरे अंक से यह पत्रिका 'बोटेनिकल सोसाइटी' द्वारा प्रकाशित की जाने लगी। इस प्रकार जिस ग्रन्थालय में यह पत्रिका पहले से आती

रही होगी वहाँ की व्यवस्था में वर्णित वर्गीकरण के कारण कितनी अस्तव्यस्तता पैदा हो जावेगी। इसी कठिनाई के कारण डा॰ रंगनाथन ने अपने द्विविन्दु वर्गीकरण में समस्त पत्रिकाओं को बिना उपयुक्त विभेद के ही रखे जाने की व्यवस्था की है। इसे स्थायित्व का सिद्धांत कहा जाता है।

सम्बद्ध अनुक्रम का सिद्धांत—किसी वर्ग के वर्गीकरण के लिए किसी क्रम से अनेक विशेषताओं का प्रयोग किया जाता है वह भी वर्गीकरण के ध्येय के अनुकूल होना चाहिए।

उदाहरण के लिए द्विविन्दु वर्गीकरण के दो वर्गों की विशेषताओं की तुलना करिए। अंग और समस्या दोनों ही विशेषताएँ चिकित्सा-शास्त्र तथा जीव शास्त्र दोनों वर्गों में आती हैं परन्तु चिकित्सा-शास्त्र में इनका क्रम निम्न प्रकार से है :—

ड (अंग) : (समस्या)

जब कि जीवशास्त्र में निम्न क्रम है :

ट (नैसर्गिक समूह) (समस्या) : (अंग)

इन क्रमों में भेद का कारण दोनों वर्गों के विशेष उद्देश्य में अन्तर है। दोनों ही वर्गों के वर्गीकरण के लिए विशेषताओं का प्रयुक्त क्रम अनुकूल है। चिकित्सा-शास्त्र में अंग की विशेषता पहले है और उन अंगों के रोगों और उनके निदान की बाद में परन्तु जीवशास्त्र में नैसर्गिक समूहों के बाद उनकी समस्याओं का स्थान आता है और उसके भी बाद अंग का। यह क्रम दोनों ही विज्ञानों के उपयोगों के अनुकूल अधिक लाभप्रद है। साहित्य के वर्गों के वर्गीकरण में दशमलव तथा द्विविन्दु दोनों ही में निम्न क्रम का उपयोग किया गया है। द्विविन्दु वर्गीकरण में

द (भाषा) : (रूप) : (लेखक) : (ग्रन्थ)

तथा दशमलव वर्गीकरण में

भाषा. (रूप) (युग) (लेखक)

क्रम का उपयोग किया गया है। यह क्रम साहित्य के वर्गीकरण के उद्देश्य के अनुकूल अधिक उपयुक्त हैं। द्विविन्दु वर्गीकरण दशमलव वर्गीकरण की अपेक्षा अधिक सामान्याभिधान की ओर बढ़ता है। परन्तु दोनों के दृष्टिकोण से प्रयुक्त क्रम सम्बद्ध अनुक्रम के सिद्धांत के अनुकूल है।

दृढ़ता का सिद्धांत—जो विशेषताएँ वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त की जावें वे निश्चित रूप से और दृढ़ता के साथ स्थिर होनी चाहिए। दृढ़ता में किसी प्रकार की कमी अव्यवस्था उत्पन्न कर देती है और वर्गीकरण के उद्देश्य को असफलता का कारण बन जाती है। जब वर्गीकरण की विशेषताओं के सम्बन्ध में निर्णय निश्चित रूप से कर लिया जावे तो फिर उसे दृढ़ता के साथ पालन करना चाहिए उसमें पुनः किसी प्रकार का अन्तर या परिवर्तन होना न चाहिए। निश्चय के बाद किसी प्रकार का अतिक्रम हानिप्रद सिद्ध होता है।

इतिहास के वर्गीकरण में दशमलव वर्गीकरण ने देश या प्रदेश और काल दो विशेषताओं का उपयोग किया है। इन विशेषताओं को

(देश या प्रदेश) : (काल)

क्रम में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार द्विविन्दु वर्गीकरण में इतिहास के ही वर्गीकरण के लिए तीन विशेषताएँ देश, समस्या, तथा काल का प्रयोग किया है। इनका क्रम निम्न है।

ल (देश) : (समस्या) : (काल)

अब दृढ़ता के सिद्धांत के अनुसार जो ग्रन्थालय या पुस्तकाध्यक्ष इनमें से किसी वर्गीकरण का उपयोग करते हैं उन्हें उस वर्गीकरण में प्रयुक्त विशेषताओं तथा उनके क्रम का दृढ़ता के साथ पालन करना चाहिए अर्थात् दशमलव वर्गीकरण के प्रयोक्ता देश और काल की विशेषताओं को दृढ़ता के साथ माने और द्विविन्दु वर्गीकरण के प्रयोक्ता देश समस्या और काल की विशेषताओं तथा उनके क्रम को। इसमें किसी प्रकार का अतिक्रम न होना चाहिए।

पञ्चमोच्छ्वास

अनुविन्यास तथा सिद्धान्त

विभाजन की प्रणाली की विवेचना करते हुए द्वितीय उच्छ्वास में हमने यह उल्लेख किया था कि जब हम किसी वर्ग को विशेषताओं के आधार पर विभाजित करते हैं तो समविभागों के अनुविन्यास की उत्पत्ति होती है। इन विभागों का जव फिर विभाजन किया जाता है तो उप-विभागों के अनुविन्यास का सृजन होता है। इसी प्रकार प्रत्येक बार विभाजन से समविभागों के अनुविन्यास का जन्म होता है।

इसी की अधिक व्याख्या के लिए दशमलव वर्गीकरण के वर्गों, उपवर्गों, विभागों तथा उपविभागों का उदाहरण ले सकते हैं। मुख्य वर्ग प्रथम श्रेणी के अनुविन्यास प्रकट करते हैं।

०—सामान्य वर्ग।
१—दर्शन शास्त्र।
२—धर्म शास्त्र।
३—समाज शास्त्र।
४—भाषाविज्ञान।
५—विज्ञान।
इत्यादि।

इन समस्त वर्गों के विभाग द्वितीय श्रेणी के अनुविन्यास में आते हैं।

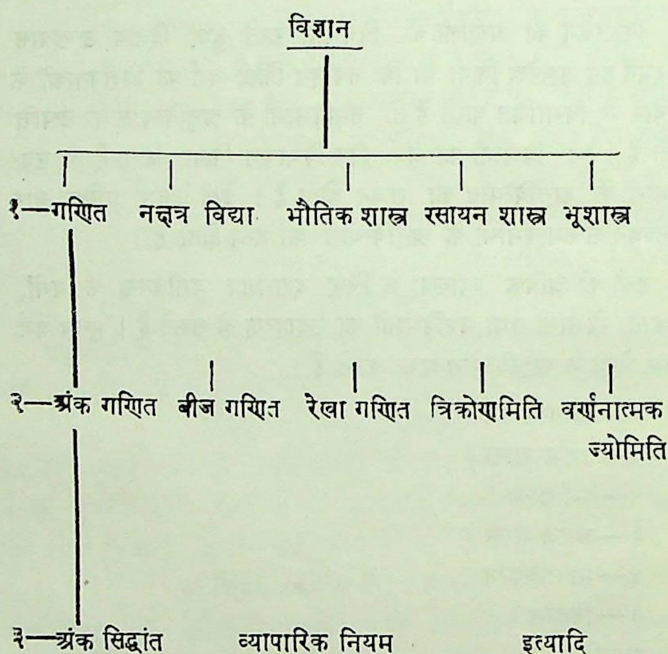
५०—विज्ञान।
५१—गणित।
५२—नक्षत्र विद्या।
५३—भौतिक शास्त्र।

५४—रसायन शास्त्र ।

५५—भूतत्व विद्या ।

इत्यादि ।

इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए रेखाचित्र के रूप में निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है :—



इस प्रकार परस्पर गरिमा के अनुकूल व्यवस्थित वर्गों का क्रम या अनुक्रम अनुविन्यास कहलाता है। वर्गों के अनुविन्यास के सम्बन्ध में चार सिद्धांतों का विवेचन विद्वानों ने किया है :

(अ) निःशेषता का सिद्धांत ।

(ब) अपवर्जिता का सिद्धांत ।

(स) अनुकूल क्रम का सिद्धांत।

(द) संगत क्रम का सिद्धांत।

अनुकूल क्रम की विशद व्याख्या तृतीय उच्छ्वास में की जा चुकी है अतएव उसकी पुनरावृत्तिकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

निःशेषता का सिद्धांतः—अनुविन्यास के समस्त वर्गों में ज्ञानक्षेत्र के सभी सत्वों को चाहे वह मूर्त हों या अमूर्त उचित स्थान मिल जाना चाहिए। अनुविन्यास के समस्त वर्गों में सम्बन्धित ज्ञानक्षेत्र निःशेष हो जाना चाहिए। ज्ञानक्षेत्र का कोई भी मूर्त या विचारात्मक सत्व ऐसा न रहना चाहिए जिसे तत्सम्बन्धित अनुविन्यास के वर्गों में स्थान न प्राप्त हो जाय। दशमलव तथा द्विबिन्दु दोनों ही वर्गीकरणों में निःशेषता के सिद्धांत का पालन किया गया है। दशमलव वर्गीकरण में इस हेतु अवशिष्ट तत्व वर्गों तथा अन्य वर्गों का लगभग पूरी अनुसूची में प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ साहित्य के वर्गों में समस्त मुख्य साहित्यकारों के विशिष्ट विभागों के बाद अन्य छोटे लेखक, अन्य छोटे नाटककार या अन्य छोटे साहित्यकार इत्यादि वर्गों का प्रयोग किया गया है। जर्मन साहित्य ८५३ के उपविभागों में अवशिष्ट जर्मन साहित्य को स्थान देकर ज्ञानक्षेत्र की निःशेषता के लिए प्रयत्न किया गया है।

८३० जर्मन साहित्य।
८३१ जर्मन कविता।
८३२ जर्मन नाट्य।
८३३ जर्मन उपन्यास।
८३४ जर्मन लेख।
८३५ जर्मन भाष्य।
८३६ जर्मन पत्र।
८३७ जर्मन हास्य तथा व्यंग।
८३८ विविध।
८३९ अन्य जर्मन साहित्य।

इसी प्रकार केवल अन्य साहित्यों में ही नहीं अन्य अनेक वर्गों और उनके विभागों में अवशिष्ट सत्व वर्गों तथा अन्य वर्गों का प्रयोग किया गया है। इन वर्गों में जो भी अवशिष्ट भाग होता है व्यवस्थित कर दिया जाता है और अन्वेषण तथा खोज के आधार पर नवीन उत्पन्न होनेवाले ज्ञान के लिए भी स्थान सुरक्षित हो जाता है। प्रत्यक्ष व्याख्या के लिए निम्न अनुसूची पर ध्यान दीजिए :—

८२०	अंग्रेजी साहित्य।
८२२	नाट्य।
८२२·३	एलिजाबेथ युग।
८२२·३३	शेक्सपियर।
८२२·३९	छोटे नाट्यकार।

उपर्युक्त अनुसूची से प्रकट है कि ८२२·२१ से ८२२·८२२·३८ तक आठ प्रमुख एलिजाबैथकालीन नाट्यकारों की व्यवस्था की गई है। और शेष सभी छोटे नाट्यकारों के लिए ८२२·३९ वर्ग में व्यवस्था की गई है जो एक अवशिष्ट सत्व वर्ग है।

दशमलव वर्गीकरण ने जहाँ तक मुख्य वर्गों या प्रथम अनुविन्यास के वर्गों का सम्बन्ध है अवशिष्ट सत्व वर्गों तथा अन्य वर्गों की व्यवस्था करके निःशेषता के सिद्धांत का पूर्णरूप से पालन किया है। इन अवशिष्ट सत्व वर्गों में कितने ही अन्य वर्गों की व्यवस्था की जा सकती है। लेकिन उच्च क्रम के वर्गों में ऐसी व्यवस्था नहीं पाई जाती। इसका एक कारण यह भी है कि दशमलव वर्गीकरण का संकेतन सीमित है। प्रायः ३०० समाज शास्त्र, ५०० विज्ञान, तथा ६०० उपयोगी विज्ञान में कोई भी स्थान रिक्त नहीं जिसमें नवीन वर्गों की व्यवस्था सम्भव हो। अतएव खोज के आधार पर उत्पन्न किसी नवीन विज्ञान की व्यवस्था इन वर्गों में हो पाना असम्भव है।

डा॰ रंगनाथन ने द्विविन्दु वर्गीकरण में निःशेषता के सिद्धांत का

पालन करने के लिए उन्मुक्त अनुविन्यास तथा अष्टक संकेतन का प्रयोग किया है। जिस अनुविन्यास में नवीन विभागों की वृद्धि सम्भव हो उसे उन्मुक्त अनुविन्यास कहते हैं। दशमलव वर्गीकरण में प्रथम श्रेणी के ३ अनुविन्यास, द्वितीय श्रेणी के १८ अनुविन्यास, तथा कुछ उच्च क्रम के अनुविन्यास अन्य सिद्धांत की सहायता से उन्मुक्त रखे जा सके हैं।

प्रथम श्रेणी

२९० अक्रिश्चियन धर्म।
४९० अन्य भाषाएँ।
८९० अन्य भाषाओं के साहित्य।

द्वितीय श्रेणी

१०९ अन्य दार्शनिक विधियाँ।
१७९ अन्य नैतिक विषय।
१९९ अन्य आधुनिक दार्शनिक।
२५९ अन्य कार्य।
२८९ अन्य अक्रिश्चियन धर्म।
३६९ अन्य संगठन तथा संस्थाएँ।
इत्यादि।

द्विविन्दु वर्गीकरण में प्रायः सभी अनुविन्यास अष्टक सिद्धांत, विषय-प्रक्रिया, आनुतिथि प्रक्रिया, भौगोलिक प्रक्रिया, तथा वर्णक्रम प्रक्रिया द्वारा उन्मुक्त बना दिये गये हैं। कुछ भी हो तुलनात्मक दृष्टि से द्विविन्दु वर्गीकरण में निःशेषता के सिद्धांत का अपेक्षाकृत अधिक पालन करने का प्रयास किया गया है।

अपवर्जिता का सिद्धांत—इस सिद्धांत के अनुसार वर्गों के अनुविन्यास का प्रत्येक वर्ग निषेधक होना चाहिए। अर्थात् कोई भी सत्व एक से अधिक वर्गों में समाहित न होना चाहिए। दूसरे शब्दों

में हम यह भी कह सकते हैं कि अनुविन्यास के कोई भी दो वर्ग अतिच्छादी न होने चाहिए। अथवा उनके सत्व सम न होने चाहिए। इस परिभाषा की अधिक स्पष्ट व्याख्या के लिए दशमलव वर्गीकरण की शिक्षा की अनुसूची पर ध्यान देना है :—

३७० शिक्षा
३७१ शिक्षण
३७२ प्रारम्भिक शिक्षा
३७३ माध्यमिक शिक्षा
३७४ प्रौढ़ शिक्षा
३७५ पाठ्य क्रम
३७६ स्त्री शिक्षा
३७७ नैतिक और धार्मिक शिक्षा
३७८ विद्यालय तथा विश्वविद्यालय
इत्यादि।

इसी वर्ग के द्विविन्दु वर्गीकरण ने दो विशेषताओं के आधार पर विभाग किये हैं। शिक्षा की अवस्थाओं के आधार पर निम्न वर्गों का निर्माण हुआ :—

म १ प्राथमिक
म २ माध्यमिक
म ३ प्रौढ़
म ४ विश्वविद्यालय
म ५५ स्त्री शिक्षा
इत्यादि।

'माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम'। हाईस्कूल तथा इन्टरमीजिएट परीक्षा समिति प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तिका का वर्गीकरण की कृत्रिम भाषा में द्विविन्दु वर्गीकरण के अनुसार अनुवाद म २ : ८४

होगा। इसके अतिरिक्त इस विशिष्ट विषय का किसी अन्य वर्ग में या वर्ग संख्या में व्यवस्थापन नहीं किया जा सकता। दशमलव वर्गीकरण के अनुसार इस विषय की वर्गसंख्या ३७३ होगी परन्तु जिस पृष्ठभूमि पर हम इस विशिष्ट विषय की व्यवस्था ३७३ वर्गसंख्या में करते हैं वह केवल परिपाटी है। अन्यथा हम इसे ३७३ वर्गसंख्या के अतिरिक्त ३७५ वर्गसंख्या में भी व्यवस्थित कर सकते हैं जो पाठ्यक्रम के लिये विशेष वर्गसंख्या है। ऐसी दशा में ये दोनों वर्ग अतिच्छादी हैं अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि एक ही सत्व पाठ्यक्रम एक से अधिक वर्गों में रखा जा सकता है। केवल यही नहीं दशमलव वर्गीकरण के व्यवस्था के आधार पर उत्पन्न सभी वर्गों के साथ यही समस्या उत्पन्न होगी।

इस प्रकार इस सिद्धांत की अवहेलना से भ्रम और अव्यवस्था दोनों ही उत्पन्न हो जावेंगी। अतएव किसी वर्ग के विभाजन के लिए एक साथ एक ही विशेषता प्रयोग की जानी चाहिए जैसा द्विविन्दु वर्गीकरण ने किया है। दशमलव वर्गीकरण ने एक साथ दोनों विशेषताओं, अवस्था और समस्या का प्रयोग किया है जिससे किसी सत्व की एकमात्र व्यवस्था नहीं की जा सकी अर्थात् ऐसे वर्गों की सृष्टि नहीं की जा सकी जो अतिच्छादी न हों।

संगत क्रम का सिद्धांत – जब एक ही या एक से अधिक वर्ग से अधिक अनुविन्यासों में आवें तो उनकी व्यवस्था एक ही प्रकार एक ही क्रम से की जानी चाहिए। इस सिद्धांत से पालन के समय, अवधान और मानसिक शक्ति की बचत होगी। यदि इस सिद्धांत के पालन से अन्य किसी प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती तो समान वर्गसमूहों की व्यवस्था समान क्रम में की जानी चाहिए चाहे वे किसी भी अनुविन्यास में क्यों न हों।

इस सिद्धांत का पालन प्रायः सभी प्रमुख वर्गीकरणों में किया गया है। जे० डी० ब्राउन ने अपने विषय वर्गीकरण में निरपेक्ष सूची

का प्रयोग किया है। इस सूची में उन प्रारूप विभागों तथा उपभेदों का विवरण है जिनके प्रत्येक वर्ग में बार बार प्रयोग से वर्गीकरण अनुसूची में अनावश्यक वृद्धि होगी। इसी प्रकार कटर के व्यापक वर्गीकरण में (१) सामान्य उपभेदों की सूची तथा (२) प्रदेश भेद सूची का प्रयोग किया गया है।

श्री मलविल डेवी ने दशमलव वर्गीकरण में (१) सामान्य उपभेदों की सूची (२) प्रदेश भेद सूची (३) उद्योग के विभागों की व्यवस्था तथा (४) आनुतिथ क्रम की व्यवस्था इसी प्रकार की है। श्री रंगनाथन ने द्विविन्दु वर्गीकरण में इस सिद्धांत का पालन (१) सामान्य उपभेदों (२) प्रदेश भेदों (३) आनुतिथ सूची (४) द्विविन्दु प्रक्रिया (५) विषय प्रक्रिया तथा अभ्यानति अंक प्रक्रिया की सहायता से किया है।

उदाहरण के लिए शिक्षा में अध्ययन के विषयों का वर्गीकरण करने के लिए ०१० से ९९९ तक सम्पूर्ण अनुसूची की तरह वर्गीकरण करने की व्यवस्था दशमलव वर्गीकरण में दी गई है।

३७५ पाठ्य क्रम

३७५.०१ से ३७५.९ विशिष्ट विषयों का पाठ्यक्रम

३७५.४२ आंग्ल भाषा का पाठ्यक्रम

३७५.५४ रसायन शास्त्र का पाठ्यक्रम

द्विविन्दु वर्गीकरण में इसी प्रकार विषय प्रक्रिया के आधार पर ढ उपयोगी कला में :—

ढ उपयोगी कला

ढ उ १ गणक यंत्र

ढ क ग्रामोफोन

जिसमें उ १ अंक गणित और क ३ ध्वनि के विषय संयोग से उपर्युक्त विभागों का निर्माण विषय प्रक्रिया के आधार पर किया गया है।

सामान्य उपभेदों, प्रदेश भेदों तथा आनुतिथ क्रमांकों के प्रयोग

से प्रत्येक वर्ग में जहाँ भी उनका प्रयोग किया जाय स्वतः ही संगत क्रम उत्पन्न हो जाता है।

६०३	ऐतिहासिक शब्दकोष	लटं
५०३	वैज्ञानिक शब्दकोश	इटं
६०२	संक्षिप्त इतिहास	लहं
३३०.२	संक्षिप्त अर्थशास्त्र	शहं
६०५	ऐतिहासिक पत्रिका	लथं
५०५	वैज्ञानिक पत्रिका	इथं
३२०.५	राजनीतिक पत्रिका	वथं

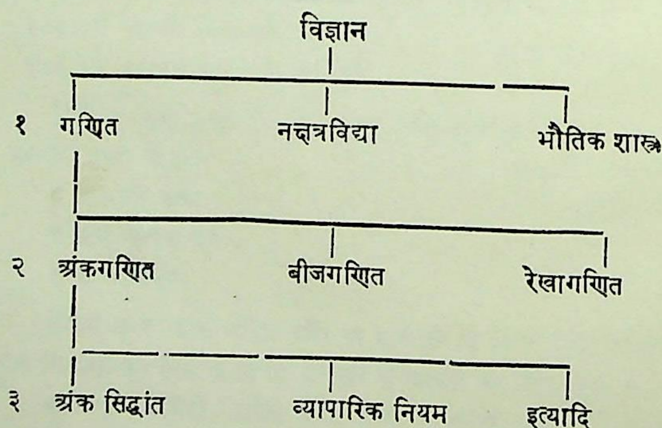
उपर्युक्त उदाहरणों से संगत क्रम के सिद्धांत का अभिप्राय पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है। अनुसूची में सरलता एवं क्रमबद्धता लाने के लिए संगत क्रम के सिद्धांत का पालन करना अनिवार्य हो जाता है।

———

षष्टमोच्छ्वास

शृंखला तथा उससे सम्बन्धित सिद्धान्त

वर्गीकरण में जब हम किसी विषय को विशेषताओं की सहायता से विभाजित करते हैं तो समान विभागों के अनुविन्यास की सृष्टि होती है। इनमें से प्रत्येक विभाग पुनः विभाजित किया जा सकता है और इसके परिणामस्वरूप अन्य अनुविन्यास उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक विभाजन से एक नवीन अनुविन्यास की सृष्टि होती है चाहें वह अनुविन्यास केवल दो वर्गों का ही हो। विभाजन के प्रत्येक पग पर अनुविन्यास के साथ साथ हम यह भी देखते हैं कि आश्रित विभागों की शृंखला में एक कड़ी प्रत्येक बार बढ़ती जाती है। अनुविन्यास की व्याख्या में पूर्व उच्छ्वास में विज्ञान के विभागों का निम्न उदाहरण दिया गया है :—



उपर्युक्त विभाजन में विज्ञान के अनुविन्यास तथा शृंखलाओं का चित्रण किया गया है। इसमें समान विभागों के तीन अनुविन्यास बनते हैं। यदि हम अंक सिद्धांत से प्रारम्भ करके नीचे से ऊपर की ओर अग्रसर हों तो सामान्य विषय विज्ञान तक पहुँच जाते हैं। इसे हम अंक सिद्धांत से विज्ञान तक या विज्ञान से अंक सिद्धांत तक क्रमशः आश्रित विभागों की एक शृंखला कह सकते हैं। अतएव यह स्मरणीय है कि जब हम विभाजन करते हैं तो केवल समान विभागों के अनुविन्यास की ही सृष्टि नहीं होती अपितु समान रूप से शृंखलाओं में भी वृद्धि होती है।

शृंखला का अन्य उदाहरण अर्थशास्त्र की अनुसूची से प्रस्तुत किया जाता है :—

३३०	अर्थशास्त्र
३३१	श्रम
३३१·८	श्रमजीवी वर्ग
३३१·८१	समय की अवधि
३३१·८१४	अधिक समय

इस शृंखला में 'अधिक समय' शृंखला की अन्तिम कड़ी है। 'अधिक समय' से अर्थशास्त्र तक एक शृंखला है। इसमें कोई भी दो वर्ग एक ही अनुविन्यास के नहीं हैं। यही शृंखला द्विबिन्दु वर्गीकरण में इस प्रकार है :—

श	अर्थशास्त्र
श : ६	श्रम
श : ६५	भृत्यत्व अभिसंधि
श : ६५१	समय के घंटे
श : ६५११	अधिक समय

४

जो शृंखला आदि विश्व से उत्पन्न होती है उसे पूर्ण शृंखला कहा जाता है और जो आदि विश्व से उत्पन्न नहीं होती वह असम्बद्ध शृंखला कहलाती है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण में ३३१·८१४ के द्वारा प्रकट की गई शृंखला असम्बद्ध शृंखला है क्योंकि यह चतुर्थ अपरिवर्तन में रोक दी गई है। इसका प्रारम्भ या आदि ००० सामान्य वर्ग नहीं है। इस असम्बद्ध शृंखला को पूर्ण शृंखला के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है।

०००	सामान्य
३००	समाजशास्त्र
३३०	अर्थशास्त्र
३३१	श्रम
३३१·८	श्रमजीवी वर्ग
३३१·८१	समय की अवधि
३३१·८१४	अधिक समय

इस पूर्णशृंखला को आद्य या प्राथमिक शृंखला कहा जाता है। प्रत्येक शृंखला का निर्माण निम्न दो सिद्धांतों के आधार पर किया जाना चाहिए।

सामान्याभिधान का सिद्धांत—इस सिद्धांत द्वारा प्रतिपादित सत्य के अनुसार विशिष्ट विषयों की इस प्रकार व्यवस्था की जानी चाहिए कि जैसे-जैसे हम शृंखला की प्रथम कड़ी से अन्तिम कड़ी की ओर बढ़ते जायें वर्गों का सामान्याभिधान बढ़ता जाना चाहिए। सामान्याभिधान की वृद्धि के साथ-साथ वर्ग की वितति कम होती जाती है। अनुकूल क्रम के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए वितति अवरोहण के नियम का उल्लेख किया गया है। सामान्याभिधान और उक्त सिद्धांत एक ही हैं क्योंकि वे एक ही तथ्य की भिन्न रूपों में व्याख्या करते हैं।

विभाजन की प्रणाली में ज्ञानक्षेत्र को विशेषताओं की सहायता से विभाजित करते हैं और एक के बाद एक ये फलित वर्ग तब तक क्रमशः विभाजित होते रहते हैं जब तक कि उनका और विभाजन असम्भव न हो जाय। इस उपर्युक्त प्रक्रिया में हम प्रजाति से जाति की ओर बढ़ते हैं। संयुक्त जातियों का परिणाम प्रजाति तथा विभक्त प्रजाति का अर्थ जातियों की उत्पत्ति है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विभाजन में हम व्यापकता से संकीर्णता की ओर बढ़ते जाते हैं।

यह सिद्धांत केवल एक ही और उसी शृंखला के वर्गों के साथ लागू होता है। इस सिद्धांत का पालन केवल उन्हीं वर्गों के साथ हो सकता है जिनका पारस्परिक पैतृक बन्धुत्व हो। इसी प्रकार की दो शृंखलाएँ नीचे दी जाती हैं।

सामान्य	०००	०००	सामान्य
भाषाशास्त्र	४००	८००	साहित्य
अन्य भाषाएँ	४९०	८९०	अन्य साहित्य
यूरेशीय भाषाएँ	४९१	८९१	यूरेशीय साहित्य
आधुनिक भारतीय भाषाएँ	४९१.४	८९१.४	आधुनिक भारतीय साहित्य
हिन्दी	४९१.४२	८९१.४२	हिन्दी
		८९१ ४२१	हिन्दी पद्य

उपर्युक्त दोनों शृंखलाओं में सामान्याभिधान का सिद्धांत लागू होता है क्योंकि प्रत्येक शृंखला के वर्गों में पैतृक बन्धुत्व है परन्तु हिन्दी भाषा तथा हिन्दी साहित्य जो दो पृथक् शृंखलाओं के वर्ग हैं, यह सिद्धांत एक साथ लागू नहीं हो सकता। श्री सेअर्स ने इस सिद्धांत की व्याख्या करते हुए लिखा है कि मुख्य वर्ग विस्तृत क्षेत्री होते हैं। इसकी यह विस्तृत सीमा ही इसकी वितति है। सामान्याभिधान तात्पर्य से सम्बन्धित है। जितना बड़ा वर्ग होगा उतने ही अधिक उसके सत्व

होंगे। इसी प्रकार जैसे-जैसे हम शृंखला की अन्तिम कड़ी की ओर बढ़ते जाते हैं विभाजन के लिए प्रयुक्त विशेषताओं की संख्या बढ़ती जाती है। इस सिद्धांत की अधिक व्याख्या के लिए प्रदेश अनुसूची से एक अन्य शृंखला प्रस्तुत की जाती है।

१	विश्व
४	एशिया
४४	भारत
४४५	उत्तरी भारत
४४५२	उत्तर प्रदेश
४४५२१५	मुरादाबाद
४४५२५५२१	चन्दौसी

उपर्युक्त शृंखला में जैसे-जैसे हम शृंखला की प्रथम कड़ी से अन्तिम कड़ी की ओर बढ़ते जाते हैं वर्गों की वितति या उनका क्षेत्र कम होता जाता है और उनका स्वत्व या सामान्याभिधान बढ़ता जाता है। अतएव इस सिद्धांत की परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है :—

अपरिवर्तनशीलता का सिद्धांत—किसी विशिष्ट विषय की शृंखला में एक वर्ग प्रत्येक क्रम का होना चाहिए जो शृंखला की अन्तिम कड़ी और प्रारम्भिक कड़ी के बीच में आते हों। शृंखला प्रत्येक अनुविन्यास के वर्गों से पूर्ण होनी चाहिए जो उससे सम्बन्धित हो। शृंखला की प्रथम कड़ी से अन्तिम कड़ी की ओर प्रत्येक अनुविन्यास से होते हुए प्रगति होनी चाहिए। ऐसा न हो कि बीच के दो-चार वर्गों को छोड़कर एकदम शृंखला की अन्तिम कड़ी की ओर प्रगति हो जाय। साधारण रूप में हम इसका उदाहरण सीढ़ी से ले सकते हैं जिस प्रकार आरोहक या अवरोहक सीढ़ी के प्रत्येक पग से होकर चढ़ता या उतरता है सीधे दो-चार पद छोड़कर एकदम नहीं फाँद जाता उसी प्रकार शृंखला में भी प्रत्येक अनुविन्यास का वर्ग होना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्यथा श्रृंखला अव्यवस्थित रहेगी और सिद्धांत का पालन न हो सकेगा। सामान्याभिधान की श्रृंखला की व्याख्या में निम्न श्रृंखला दी गई है।

१	विश्व
४	एशिया
४४	भारत
४४५	उत्तरी भारत
४४५२	उत्तर प्रदेश
४४५२५५	मुरादाबाद
४४५२५५२१	चन्दौसी

इस श्रृंखला की प्रारम्भिक कड़ी विश्व और अन्तिम कड़ी चन्दौसी है। इस श्रृंखला में भौगोलिक विशेषताओं या आकार के आधार पर प्रत्येक क्रम का एक-एक वर्ग सम्मिलित है। यदि यही श्रृंखला इस प्रकार प्रयुक्त हो

१	विश्व	१	विश्व
४	एशिया	४४	भारत
४४	भारत	४४५	उत्तरी भारत

अथवा

४४५२५५	मुरादाबाद	४४५२	उत्तर प्रदेश
४४५२५५२१	चन्दौसी	४४५२५५२१	चन्दौसी

तो अपरिवर्तनशीलता के सिद्धांत का उल्लंघन किया जायगा क्योंकि उपर्युक्त एक प्रयोग में :—

४४५	उत्तरी भारत
४४५२	उत्तर प्रदेश

तथा दूसरे प्रयोग में

४	एशिया
४४५२५५	मुरादाबाद

दो क्रमों का प्रयोग नहीं किया गया। अपरिवर्तनशीलता का सिद्धांत कहता है कि वह वर्गीकरण की पद्धति दोषपूर्ण होगी जिसमें विश्व से मुरादाबाद की श्रृंखला में उत्तरी भारत और उत्तर प्रदेश या एशिया और मुरादाबाद वर्गों की अवहेलना की जाय।

——

सप्तमोच्छ्वास

पारिभाषिक शब्दावली तथा संकेतन

पारिभाषिक शब्दों की उस पद्धति को पारिभाषिक शब्दावलि कहा जाता है जो वर्गीकरण की व्यवस्था में वर्गों के नामकरण के लिए प्रयुक्त की जाती है। पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में इससे पूर्व पर्याप्त उल्लेख किया जा चुका है।

प्रचलन का सिद्धांत—पारिभाषिक शब्दावलि का प्रथम मान्य सिद्धांत प्रचलन का सिद्धांत है। इसके अनुसार वर्गीकरण में वर्गों की संज्ञा के लिए प्रयुक्त समस्त शब्द प्रचलित होने चाहिए। जिस विषय का वर्गीकरण किया जाय उसके विद्वानों के बीच प्रचलित शब्दों को ही पारिभाषिक शब्दावलि में स्थान दिया जाना चाहिए। इस सिद्धांत के दो स्वरूप हैं।

(अ) जिस समय वर्गीकरण पद्धति का निर्माण किया जाय वर्गों की संज्ञा के लिए वही पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किये जावें जो उस समय विद्वानों के बीच प्रचलित हों। परन्तु ये शब्द सदैव ही प्रचलित रहेंगे ऐसा कहा जा सकना निश्चित नहीं है। अतएव (ब) इसके साथ ही साथ ऐसा प्रबन्ध भी किया जाना चाहिए जिससे समय बीतने पर जब प्रचलन में कोई अन्तर हो जाय तो इन शब्दों के स्थान पर पुनः नवीन शब्दों की व्यवस्था की जा सके। इस प्रकार सदैव वर्गीकरण में प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। इस सिद्धांत के पालन के लिए दोनों ही बातें आवश्यक हैं अन्यथा इसका पालन नहीं किया जा सकता क्योंकि शाब्दिक व्यवहार समय-समय पर बदलता रहता है। उदाहरणस्वरूप दशमलव वर्गीकरण के बनाते समय श्री डेवी

ने उस समय के प्रचलित शब्द गतिशील विद्युत का प्रयोग किया था परन्तु अब इस शब्द का प्रचलन समाप्त हो चुका है और उसके स्थान पर धारा विद्युत का प्रयोग किया जाने लगा है। जब दशमलव वर्गीकरण का सृजन किया गया था तब तो यह बात ध्यान में रखी गई थी; परन्तु बाद में शब्द प्रचलन के अन्तर से अब सिद्धांत की पुष्टि नहीं होती। उपर्युक्त दृष्टांत से यह सिद्ध हो जाता है कि इस सिद्धांत के पालन के साथ-साथ इसके लिए निर्दिष्ट प्रबन्ध किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में कांग्रेस वर्गीकरण की अच्छी व्यवस्था है। इसके लिए विद्वानों की एक समिति में समय-समय पर प्रचलित शब्दों के परिवर्तन तथा अन्य सुधार हुआ करते हैं। इस सम्बन्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार भी बड़ी रुचि रखती है। दशमलव वर्गीकरण के लिए श्री वी ने इसके संस्करणों के प्रकाशन, परिवर्द्धन तथा सुधार का उत्तरदायित्व लेक प्लेसिड क्लब एजूकेशन फाउन्डेसन पर छोड़ रखा है। यद्यपि इससे इस सम्बन्ध में कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा है। द्विबिन्दु वर्गीकरण में उसके निर्माता डा० रंगनाथन द्वारा समस्त आवश्यक सुधार तथा परिवर्तन समय-समय पर होते ही रहते हैं।

निर्देशन का सिद्धांत—पारिभाषिक शब्दावली से सम्बन्धित दूसरा सिद्धांत निर्देशन का सिद्धांत कहलाता है। इसके अनुसार वर्गीकरण अनुसूची में प्रयुक्त प्रत्येक पारिभाषिक शब्द की वस्तुवाचकता शृंखलागत वर्गों की विवेचना से किया जाना चाहिए जो उसी शृंखला में उस वर्ग के पूर्व व्यवस्थित किये गये हों या जिसका कि वह वर्ग उपवर्ग या विभाग हो। इसे ही निर्देशन का सिद्धांत कहा जाता है।

इस सिद्धांत का उद्देश्य यह है कि एक ही पारिभाषिक शब्द विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न वर्गीकरणों में समान व्याप्ति के लिए प्रयुक्त किया जाय। प्रायः भिन्न वर्गीकरणों में इन शब्दों के प्रयोग में बड़ा

अन्तर है। एक ही शब्द का भिन्न विद्वानों ने भिन्न व्याप्ति के लिए प्रयोग किया है। वास्तव में इस सम्बन्ध में कोई सर्वमान्य सिद्धांत तो बनाया नहीं जा सकता। शासन द्वारा भी इसमें कोई साम्य नहीं लाया जा सकता। इसका तो केवल एक ही रास्ता है। प्रयोक्ताओं को इनका प्रयोग उनके द्वारा व्यक्त वर्गों तथा उपवर्गों की शृंखला के निर्देश द्वारा करना चाहिए।

राजनीतिशास्त्र द्वारा व्यक्त वर्ग की व्याप्ति में विभिन्न वर्गीकरणों के भिन्न प्रयोग से अन्तर उत्पन्न हो गया है। द्विविन्दु वर्गीकरण में सांविधानिक इतिहास को राजनीति शास्त्र में न रखकर इतिहास में रखा गया है जब कि दशमलव वर्गीकरण ने इसे राजनीतिशास्त्र में ही व्यवस्थित किया है।

इसी प्रकार मनोविज्ञान द्वारा व्यक्त वर्ग प्रायः सभी वर्गीकरणों में दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत व्यवस्थित किया गया है। केवल द्विविन्दु वर्गीकरण में मनोविज्ञान तथा दर्शनशास्त्र दोनों सम वर्गों में सम व्याप्ति के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। द्विविन्दु तथा अन्य वर्गीकरणों द्वारा प्रयुक्त मनोविज्ञान शब्द में अन्तर उत्पन्न हो गया है। यह अन्तर केवल निर्देशन तथा व्याप्ति भेद द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

अंकगणित के उपवर्गों के निर्देशन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस ग्रन्थालय वर्गीकरण तथा दशमलव वर्गीकरण में यह केवल साधारण अंकगणित तक ही सीमित रहता है। इससे उच्च अंकगणित तथा अंक सिद्धांत से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

५११	अंकगणित
५११·१	अंकगणित की पद्धतियाँ
५११·२	संकेतन तथा संख्या
५११·३	प्रारम्भिक संख्या

५११·४	सूक्ष्मांश
५११·५	विश्लेषण
५११·६	अनुपात
५११·७	घात क्रिया तथा वर्गमेल
५११·८	व्यापारिक नियम
५११·९	समस्याएँ एवम् नियम

उपर्युक्त अनुसूची से यह प्रकट हो जाता है कि दशमलव वर्गीकरण के अंकगणित की व्याप्ति केवल साधारण अंकगणित तक है जबकि द्विबिन्दु वर्गीकरण में अंकगणित में ही उच्च अंकगणित या अंकसिद्धांत की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार इसकी व्याप्ति तथा अन्य प्रयोगों की व्याप्ति में बड़ा अन्तर है।

ब १	गणित
ब ११	साधारण अंकगणित
ब १२	अंक विचारणा
ब १३	पूर्णांक
ब १४	
ब १५	बीजगणित सम्बन्धी अंक
ब १६	मूल तथा अतिमूल अंक
ब १८	अस्पष्ट अंक

इस प्रकार निर्देशन या अनुलय द्वारा किसी भी पारिभाषिक शब्द की वस्तु वाचकता वर्गीकरण में प्रयुक्त उसकी व्याप्ति से की जानी चाहिए।

प्रसंग का सिद्धांत— वर्गीकरण पद्धति में प्रत्येक पारिभाषिक शब्द की वस्तुवाचकता उसी प्रारम्भिक शृंखला के निम्न क्रम के भिन्न वर्गों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। इसे ही प्रसंग का सिद्धांत कहा जाता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि एक ही शब्द का अनेक

स्थानों पर अनेक वर्गों में भिन्न अर्थों के लिए प्रयोग किया जाता है। वर्गीकरण करनेवाले को चाहिए कि उसे जब ऐसे किसी भी ग्रन्थ की व्यवस्था करनी हो जिससे शीर्षक का प्रमुख शब्द बहुअर्थी हो तो भिन्न वर्गों में प्रयुक्त उस पारिभाषिक शब्द के प्रसंग को अवश्य ध्यान में रखें। यह व्यवस्था निरंकुश या बिना किसी नियम के न की जानी चाहिए।

उदाहरण के लिए दशमलव वर्गीकरण में 'दुर्घटना' शब्द खनिज शिल्प, बीमा, अर्थशास्त्र के उपवर्ग श्रम में तथा समाज शास्त्र में पाया जाता है। अब यदि किसी ऐसे ग्रन्थ की व्यवस्था करनी हो जिसके शीर्षक में 'दुर्घटना' शब्द की प्रधानता हो तो हमें सदैव उस ग्रन्थ के 'दुर्घटना' शब्द द्वारा प्रकट प्रसंग तथा वर्गीकरण में प्रयुक्त उस शब्द द्वारा व्यक्त वर्ग के प्रसंग का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

इस सिद्धांत की आवश्यकता इसलिए ज्ञात होती है कि प्रायः एक ही शब्द अनेक भिन्न सत्वों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए पत्थर पर कोई ग्रन्थ इसके भू-शास्त्रीय प्रयोग से सम्बन्धित हो सकता है या इमारती सामान के रूप में अथवा इसका सम्बन्ध मूत्र नलिका में पत्थर की बीमारी से हो सकता है।

इसी प्रकार अन्य पारिभाषिक शब्द 'आधार' गणित के विश्लेषण वर्ग में आता है और इसका प्रयोग इमारत के सम्बन्ध में भी किया जाता है परन्तु इन दोनों ही पारिभाषिक शब्दों की वस्तुवाचकता में उनके भिन्न उपयोग से अन्तर है।

कभी-कभी शब्दों का प्रयोग भी लेखकों द्वारा शीर्षनिर्माण के लिए बड़े अस्पष्ट तथा काव्यात्मक ढंग से किया जाता है। उपर्युक्त शब्द आधार मात्र शीर्षक वाले ग्रन्थ की व्यवस्था बिना प्रसंग की सहायता से ठीक नहीं की जा सकती क्योंकि इसका प्रयोग अनेक अर्थों में किया जा सकता है। श्री सेअर्स ने प्रसंग के सिद्धांत को अपने सोलहवें सिद्धांत

में व्यक्त करते हुए लिखा है कि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग वर्गीकरण की प्रत्येक प्रक्रिया में सप्रसंग किया जाना चाहिए । पुनश्च

यदि किसी वर्गसंख्या के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द अपूर्ण या अनेकार्थी हो तो ठीक और स्पष्ट अर्थ के लिए उसी शृंखला के पूर्व वर्ग के प्रसंग से लाभ उठाना चाहिए जिसका कि यह वर्ग हो । उदाहरण के लिए दशमलव वर्गीकरण में

५३७.५ गतिशील

शब्द का प्रयोग किया गया है जो स्वयं विशेषण है अतएव इसका प्रयोग स्पष्ट रूप से नहीं किया जा सकता जब तक कि हम शृंखला के पूर्ववर्ग ५३७ विद्युत का प्रसंग न देखें । इस कमी को दूर करने के लिए विशेषणों के साथ-साथ वर्गीकरण में संज्ञा शब्दों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए । परन्तु इससे वर्गीकरण अनुसूची में अनावश्यक वृद्धि होती है । इनका प्रयोग तो सदैव प्रसंग के सिद्धांत का पालन करते हुए आसानी से किया जा सकता है ।

संयम का सिद्धांत—पारिभाषिक शब्दावली से सम्बन्धित चतुर्थ सिद्धांत संयम का सिद्धांत है । डा० रंगनाथन ने इसकी परिभाषा निम्न प्रकार से दी है ।

"वर्गीकरण अनुसूची के वर्गों में वर्गों के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों को आलोचनात्मक न होना चाहिए ।"

इस प्रकार इस सिद्धांत के आधार पर वर्गीकरण अनुसूची में प्रयुक्त शब्द केवल वर्णनात्मक होने चाहिए । वर्गीकरण निर्माता को अपने विचारों के अनुकूल समालोचनात्मक तथा आलोचनात्मक शब्दों का प्रयोग न करना चाहिए । उसे तो केवल वर्गों की समान व्याप्ति वाले साधारण शब्दों का प्रयोग करना ही अपेक्षित है । आलोचना या समालोचना में यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक के विचार समान हों । उनमें विभिन्नता हो सकती है और समय के अनुकूल परिवर्तन भी । इस प्रकार

सदैव देशकाल गत विभेद हीन वर्णनात्मक शब्दों का ही प्रयोग परिभाषिक शब्दों के लिए करना चाहिए।

उदाहरण के लिए दशमलव वर्गीकरण में १३३'१३५ के अन्तर्गत १३३.७ वर्ग के लिए 'पाखन्डी" पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किया गया है। इस शब्द के प्रयोग करने में उपर्युक्त सिद्धांत का बिलकुल ध्यान नहीं रखा गया। इसी प्रकार साहित्य की अनुसूची में "उच्च लेखक" तथा "निम्न कोटि के लेखक" शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है जब कि उपर्युक्त सिद्धांतानुसार एक वर्गीकरण निर्माता को साहित्यिकों के सम्बन्ध में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना पूर्ण-रूपेण निषिद्ध है। आज जो साहित्यिक किन्ही कारणों से निम्न कोटिका गिना जाता है या नगण्य है कल वही राष्ट्रकवि हो सकता है। डा० रंगनाथन ने लिखा है कि हम इस सम्बन्ध में कैसे निश्चिन्त हो सकते हैं कि एक नगण्य साहित्यकार समय बीतने पर उच्च कोटि का साहित्यिक नहीं हो सकता। यदि ऐसा सम्भव है तो वर्गीकरण में स्थायित्व न रह जायगा।

संकेतन

संकेतन चिन्हों या संकेतों की एक माला है जिसका प्रत्येक चिन्ह या संकेत वर्गीकरण के किसी वर्ग को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। डा० रंगनाथन ने लिखा है "संकेतन वर्गीकरण के विशिष्ट विषयों को प्रकट करनेवाली क्रमिक संख्याओं की एक पद्धति है। रिचर्ड-सन संकेतन को आशुलिपि चिन्ह कहता है। ब्लिस इसे केवल लघु चिन्ह कहना ही अधिक श्रेयस्कर समझता है। जिस प्रकार गणित में संख्याएँ तथा अक्षर बड़ा महत्त्व रखते हैं उसी प्रकार वर्गीकरण में संकेतन का भी बड़ा महत्व है। संकेतन के न होने पर हम प्रत्येक ग्रन्थ के पीछे और सूचीकरण इत्यादि प्रत्येक आलेखन में पारिभाषिक शब्द नहीं लिख सकते। कहना तो यह चाहिए कि बिना संकेतन के हम वर्ग तथा ग्रन्थ व्यवस्था में सहायक क्रम नहीं बना सकते हैं।

सेअर्स ने लिखा है कि एक उत्तम संकेतन निकृष्ट वर्गीकरण को श्रेष्ठ नहीं बना सकता परन्तु निकृष्ट संकेतन द्वारा वर्गीकरण की अधिकतम उपयोगिता नष्ट हो सकती है। ग्रन्थालय वर्गीकरण के लिए संकेतन पूरक तथा निकटतम सम्बन्धित है। यद्यपि संकेतन वर्गीकरण में प्रमुख विशेषता नहीं रखता फिर भी वर्गीकरण के प्रयोग के लिए संकेतन की बड़ी आवश्यकता होती है। संकेतन का उद्देश्य वर्गीकरण पद्धति में प्रयुक्त वर्गसंज्ञाओं को एक संकेत या चिन्ह प्रयुक्त करना होता है। वर्गसंख्या इस प्रकार वर्गसंज्ञा का अनुसूची में स्थानीयकरण कर देती हैं। संकेतन को पुस्तक पर वर्गसंज्ञा का उल्लेख करने में भी प्रयोग किया जाता है। बिना वर्गीकरण अनुसूची को अव्यवस्थित किये नवीन विषयों की उसके बीच व्यवस्था करने के लिए भी संकेतन की आवश्यकता होती है। साधारणता, संक्षेपता, तथा लचीलापन संकेतन की तीन विशेषतायें हैं। संकेतन की साधारणता इस बात पर निर्भर करती है कि किस प्रकार के संकेतन का प्रयोग किया जाय। उस संकेतन को पवित्र माना जाता है जिसमें एक ही प्रकार के संकेतों का प्रयोग किया जाता हैं। एक से अधिक संकेतों का प्रयोग किये जानेवाले संकेतन को मिश्रित संकेतन कहा जाता है। श्री सेअर्स के अनुसार संकेतन को पवित्र ही होना चाहिए। पवित्र संकेतन का उदाहरण दशमलव वर्गीकरण से जहाँ श्री डेवी ने केवल संख्याओं का प्रयोग किया है तथा कटर के वर्गीकरण से जहाँ उन्होंने केवल अक्षरों का प्रयोग किया है दिया जा सकता है।

रिचार्डसन साधारण मिश्रित संकेतन को अधिक अच्छा समझता है। साधारण रूप से संख्याओं तथा अक्षरों के मिश्रण से तैयार संकेतन उतना ही साधारण होता है। जितना पवित्र संकेतन उपयोगी होता है। आधुनिक संकेतन का सबसे बड़ा गुण संक्षेपता है। संकेतन जितना हो सके संक्षेप होना चाहिए। परन्तु फिलस के अनुसार समव्यापकत्व की हानि करके

संक्षेपता अभीष्ट नहीं मानी जा सकती। इन सबके लिए यह आवश्यक है कि संकेतन का आधार व्यापक और विशाल हो।

ज्ञान के क्षेत्र में सदैव एक अनिश्चितता और सम्भावना बनी रहती है। इस अनिश्चितता और सम्भावना के कारण संकेतन में ग्राहिता और लचीलापन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। अदशमलवीय वर्गीकरण में वर्गसंख्याओं के बीच बड़े-बड़े स्थान छोड़कर यह गुण लाने का प्रयास किया जाता है। परन्तु दशमलव वर्गीकरणों में यह शृंखला कितनी ही बढ़ाई जा सकती है। द्विविन्दु वर्गीकरण में अष्टक संकेतन द्वारा एक और बहुत बड़ी ग्राहिता और लचीलापन उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।

अन्य आधुनिक संकेतन की बहुत बड़ी विशेषता उसकी स्मरणीयता है। स्मरणीयता से हमारा तात्पर्य यह है कि एक ही तत्त्व जब वर्गीकरण के विभिन्न भागों में आता है तो उसके लिए एक ही संकेतन का प्रयोग किया जाय। डा० रंगनाथन के अनुसार जहाँ भी कोई सत्व एक से अधिक स्थानों पर आता हो एक ही संकेत द्वारा व्यक्त किया जाना चाहिए यदि केवल इतने से ही अन्य आवश्यक बातों की अवहेलना न हो जाती हो।

सापेक्षता का सिद्धांत—संकेतन के सम्बन्ध में सापेक्षता का सिद्धांत पहला और अकेला सिद्धांत है। इसके अनुसार वर्गीकरण अनुसूची में वर्गसंख्या की लम्बाई व्यक्त किये जानेवाले वर्ग के क्रम या सामान्याभिधान के अनुकूल होनी चाहिए। यह कहीं अधिक उत्तम हुआ होता यदि इस सिद्धांत को प्रत्यास्था या लचीलेपन का सिद्धांत कहा गया होता। जिस प्रकार हम जैसे-जैसे अपनी शक्ति बढ़ाते जाते हैं या जैसे-जैसे खींचते जाते हैं फीता बढ़ता जाता है उसी प्रकार जैसे-जैसे वर्गों के सामान्याभिधान में वृद्धि होती जाय वैसे-वैसे आनुपातिक क्रम से संकेतन की लम्बाई में वृद्धि होनी चाहिए। प्रायः दशमलव तथा द्विविन्दु वर्गीकरण में इस सिद्धांत का पालन किया गया है। विषय तथा

कांग्रेस वर्गीकरण में इस सिद्धांत की पूर्ण उपेक्षा की गई है। उदाहरणार्थ:

दशमलव वर्गीकरण	द्विविन्दु वर्गीकरण	विषय वर्गीकरण	कांग्रेस वर्गीकरण
भौगोलिक लेख ५५१	र	ओ २०१	जी ११५
प्राकृतिक भूगोल ५५१·४	र २	डी ०००	जी बी ५३
समुद्रीय विज्ञान ५५१·४६	र २५	डी १०१	जी सी ११
धाराएँ ५५१·४७	र २५६२	डी १२०	जी सी २३१
अटलांटिक की धाराएँ ५५१·४७१	र २५६२:६५	डी १२० : ४३१	जी सी २७१

इस उपर्युक्त उदाहरण में यह स्पष्ट हो जाता है कि विषय तथा कांग्रेस दोनों वर्गीकरणों को छोड़कर शेष सबमें सापेक्षता के सिद्धांत का पालन किया गया है। द्विविन्दु वर्गीकरण में इसका पालन अत्यन्त आश्चर्यजनक है। जैसे-जैसे क्रमशः शृंखला के वर्गों का सामान्याभिधान बढ़ता जाता है वैसे-वैसे क्रमशः संकेतन की लम्बाई भी बढ़ती जाती है। दशमलव वर्गीकरण में कुछ अंशों तक इसके पालन में सफलता प्राप्त हुई है।

द्विविन्दु वर्गीकरण तथा दशमलव वर्गीकरण में इस व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्न अनुसूची को उदाहरणार्थ लिया जा सकता है।

द्विविन्दु वर्गीकरण		दशमलव वर्गीकरण
घ—	रासायनिक प्रौद्योगिकी	६६०
घ—८	लवण	६६१ ४
घ—८११५०	सामान्य लवण	६६४·४
घ—;११५० : ग २२०१	विलेयता	६४४·४०००१५८१३४

इस प्रकार प्रत्यास्था या सापेक्षता के सिद्धांत के अनुसार वर्ग के सामान्यभिधान के विकास के साथ-साथ संकेतन की लम्बाई में वृद्धि होनी चाहिए।

—————

अष्टमोच्छ्वास

ज्ञान वर्गीकरण के सिद्धान्त

ग्रन्थालय वर्गीकरण की सामग्री ग्रंथों के रूप में स्वयं ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष रूप में तो हम ग्रन्थों, पत्रिकाओं या पत्रों का ही वर्गीकरण करते हैं परन्तु वास्तव में इन ग्रंथों के रूप में ज्ञान स्वयं परोक्ष रूप से वर्गीकृत हो जाता है। मानवोचित ज्ञान जन्य विचार या कल्पनायें ग्रन्थों में साहित्य के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इन विचारों या कल्पनाओं का वर्गीकरण करना अत्यन्त आसान होता है। हम आसानी से इन्हें विचार या कल्पना के विषयों के आधार पर विभाजित कर सकते हैं परन्तु ग्रन्थों का वर्गीकरण इसके साथ ही साथ उसके भौतिक आकार-प्रकार पर भी निर्भर करता है। यदि ज्ञान से उत्पन्न समस्त विचार या कल्पनाओं पर पृथक् पृथक् ग्रन्थ लिखे जाते तो ग्रंथों के रूप में उनका वर्गीकरण करना कठिन न होता परन्तु ऐसा न होकर ग्रंथ प्रकृति से ही जटिल होते हैं और प्रायः एक ही ग्रंथ में भिन्न विचारों की भिन्न विषयों के सम्बन्ध में विवेचना की जाती है। परन्तु फिर भी ग्रन्थों का वर्गीकरण ज्ञान वर्गीकरण के अनुसार ही होता है। मुख्यतः ग्रंथों का वर्गीकरण उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर होना चाहिए जिन सिद्धान्तों के आधार पर ज्ञानक्षेत्र का वर्गीकरण किया जाता है। यह विचारणीय है कि लगभग ५० भिन्न विषयों पर लेखोंवाली पुस्तक का ज्ञान वर्गीकरण के आधार पर वर्गीकरण करना कितना जटिल होगा क्योंकि हम एक ही ग्रन्थ को ज्ञानवर्गीकरण के आधार पर वर्गीकृत करके ५० भिन्न स्थानों पर व्यवस्थित नहीं कर सकते।

ग्रंथालय पंचसूत्र के आधार पर :

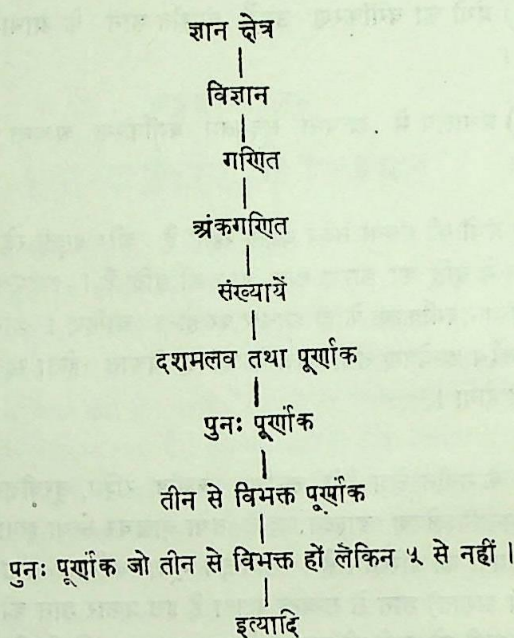
(१) पुस्तक प्राप्त करने का साधन विषय होता है।

(२) ग्रंथों का वर्गीकरण उनमें संग्रहीत ज्ञान के आधार पर होना चाहिए।

(३) ग्रंथालय में अत्यन्त सूक्ष्मतम वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक होता है।

(४) ग्रंथों की संख्या सदैव बढ़ती रहती है और बढ़ती रहेगी। ग्रंथों की संख्या में वृद्धि का कारण सतत ज्ञान की वृद्धि है। अतएव ग्रंथ का वर्गीकरण ज्ञानवर्गीकरण के ही आधार पर होना चाहिए। ज्ञानक्षेत्र की सीमा में सदैव अन्वेषण तथा खोज के कारण विकास होता रहता है यह मानना ही होगा।

ज्ञान के नवीन क्षेत्र जैसे क्षरश्मि, ब्रह्मांड रश्मि, दूरवीक्षण यंत्र, चित्रपट, मनोविश्लेषण डाल्टन पद्धति तथा बालचर संस्था इत्यादि ज्ञान की इसी क्षमता का परिणाम है। ज्ञानक्षेत्र भूत, वर्तमान तथा भविष्य (ज्ञात तथा अज्ञात) ज्ञान से सम्बन्ध रखता है इस प्रकार ज्ञान की शृंखला में अन्तिम कड़ी को कभी भी पाया नहीं जा सकता। किसी भी कड़ी को हम अन्तिम नहीं मान सकते क्योंकि अन्वेषण तथा ऋषिअर्चन द्वारा ज्ञानक्षेत्र में सतत वृद्धि होती रहती है और किसी भी समय ऐसा सम्भव हो सकता है। अतएव ज्ञान वर्गीकरण में प्रथम आवश्यक विशेषता तो यही होनी चाहिए कि कभी भी आवश्यकतानुसार ज्ञान की शृङ्खला में कड़ियों की वृद्धि की जा सके। दूसरे बिना सहायक क्रम के भ्रष्ट हुए यह वृद्धि सम्भव होनी चाहिए और कितने ही नवीन वर्गों की सृष्टि की जा सके। वर्ग संख्याओं में इस प्रकार का गुण क्रमिक संख्याओं के उपयोग से लाया जा सकता है। अतएव अन्त में सारा भार वर्गीकरण में प्रयुक्त संकेतन पर ही पड़ता है। ज्ञान की शृङ्खला का इस प्रकार उदाहरण दिया जा सकता है :—



इसी प्रकार अन्य ज्ञान क्षेत्र भी कहीं तक और कितना ही विस्तृत हो सकता है। अनिश्चित एवं सम्भव तत्त्वों, ज्ञात तथा ज्ञात होनेवाले तत्त्वों से परिपूर्ण ज्ञानक्षेत्र की अनिश्चितता तथा सम्भाविता के कारण ज्ञान क्षेत्र के वर्गीकरण के समय निम्न तीन सिद्धांतों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

अनुविन्यास में ग्राहिता:—एक ही अनुविन्यास की वर्ग संख्याओं का इस प्रकार निर्माण किया जाना चाहिए कि जिसमें कितने ही नवीन वर्गों को अनुविन्यास में बिना वर्तमान वर्ग संख्याओं या वर्गों के क्रम को अव्यवस्थित किये हुए व्यवस्थित किया जा सके। यह सिद्धांत निःशेषता के सिद्धांत का उपप्रमेय माना जा सकता है। इसी सिद्धांत द्वारा किसी भी वर्गीकरण तथा उसकी अनुसूची की ग्राहिता का परिचय प्राप्त हो जाता

है। यदि निश्चित रूप से अनुविन्यास में आहिता शक्ति रखने पर ध्यान नहीं दिया गया तो आज या कल वह वर्गीकरण तथा उसकी अनुसूचियाँ बेकार हो जावेंगी। इसके लिए कई वर्तमान वर्गीकरणों से साक्षात् उदाहरण लिये जा सकते हैं। दशमलव वर्गीकरण में इसी बात को ध्यान में रखते हुए १ से लेकर ८ तक की क्रमिक संख्याओं का प्रयोग मुख्य विषयों में ६ का प्रयोग "अन्य" विभागों के लिए किया गया है। परन्तु ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होता है कि "अन्य" विभागों की प्रक्रिया का भी मुक्त रूप से प्रयोग नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ

२६०	अन्य धर्म
४६०	अन्य भाषायें
८६०	अन्य साहित्य

प्रथम क्रम केवल तीन शृंखलाओं में ही 'अन्य' वर्ग पाये जाते हैं। अन्य वर्गों में सभी स्थानों का प्रयोग कर डाला गया है। इसी प्रकार द्वितीय क्रम के उपविभागों में

१४६	४६६
१७६	६३६
२६६	इत्यादि

कुछ ही अनुविन्यासों में इन "अन्य" विभागों की व्यवस्था हो पाई है अन्य सभी स्थानों का प्रयोग किया जा चुका है। क्रमशः उच्च क्रम के अनुविन्यासों में यह गुण और भी कम होता गया है।

द्विविन्दु वर्गीकरण में इस सिद्धांत की पर्याप्त रूप से व्यवस्था की गई है। इसके लिए डा० रंगनाथन ने निम्न ५ प्रक्रियाओं का प्रयोग किया है :

(१) अष्टक संकेतन

(२) विषय प्रक्रिया

(३) आनुतिथ प्रक्रिया

(४) भौगोलिक प्रक्रिया

(५) वर्णाक्षर प्रक्रिया

अष्टक संकेतन—यह प्रक्रिया दशमलव वर्गीकरण की अन्य प्रक्रिया के ही समान है। जब दशमलव वर्गीकरण में एक ही अनुविन्यास के वर्गों को व्यवस्थित किया गया है तो प्रायः वर्गसंख्या ९ में "अन्य" वर्ग रखे गये हैं जिनमें कितने ही अन्य नवीन वर्गों की कभी भी व्यवस्था की जा सकती है। इसी प्रकार द्विविन्दु वर्गीकरण में वर्गों को वर्गसंख्याओं में व्यवस्थित करते समय केवल १ से लेकर ८ वर्गसंख्या तक का ही प्रयोग किया गया है। ९ वर्गसंख्या का प्रयोग नहीं किया गया है यद्यपि इसमें कहीं-कहीं अपवाद भी पाया जाता है। अन्य लेखकों ने इस अपवाद का उल्लेख नहीं किया। १ से ८ के बाद दूसरे क्रम का अंक ९१ है ९ नहीं। इसी प्रकार दूसरे अष्टक क्रम में ९१ से ९८ तक अंकों का प्रयोग किया गया है ९९ का नहीं। ९८ के बाद का अंक ९९१ है ९९ नहीं। उदाहरणार्थ समाजशास्त्र में

१५८	अल्पसंख्यक
१५९१	विभूषणोत्पन्न समूह

विषय प्रक्रिया—द्विविन्दु वर्गीकरण में विषय प्रक्रिया द्वारा भी किसी भी वर्ग में कहीं नवीन वर्गों की व्यवस्था की जा सकती है। विषय प्रक्रिया में किसी भी वर्ग के साथ दूसरी ऐसी वर्गसंख्या का प्रयोग कर नवीन वर्गों की व्यवस्था की जा सकती है जिनको वास्तव में पूर्व वर्ग संख्या के विभागों में व्यवस्थित करना चाहिए। कुछ विषयों में भिन्न स्थितियों में इस प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ ढ कला में इस प्रक्रिया के द्वारा अनेकानेक विषयों की व्यवस्था की गई है।

ढऊ १	गणन यंत्र
ढक ३	सीता वाद्य
ढख १२	मृत्तिका उद्योग

इत्यादि। परन्तु द्विविन्दु वर्गीकरण में आनुतिथ सूची भी वर्णाक्षरों से प्रारम्भ होती है अतएव विषय प्रक्रिया द्वारा प्रयुक्त वर्ग संख्या जो स्वयं भी वर्णाक्षर से प्रारम्भ होती है सम्भव है कभी भ्रम उत्पन्न कर दे। अतएव इस प्रक्रिया का प्रयोग मुक्त रूप से नहीं किया जाता। इसके लिए भी अनुसूची में उल्लेख कर दिया गया है।

आनुतिथ प्रक्रिया :—द्विविन्दु वर्गीकरण में साहित्य वर्ग में साहित्कारों या लेखकों की व्यवस्था प्रत्येक रूप में आनुतिथ प्रक्रिया से की गई है क्योंकि साहित्य वर्ग में वर्गीकरण के लिये

द [भाषा] : [रूप] [लेखक] : [कार्य]

विशेषतायें प्रयुक्त की जाती हैं जिसमें लेखक के लिये उसकी जन्म-तिथि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार लेखक की जन्म तिथि से किसी भी वर्ग में कभी भी कितने ही नवीन लेखकों की व्यवस्था की जा सकती है। उदाहरणार्थ वर्ग संख्या

द ११ : २ भ ६४ शेक्सपियर के समव्यापक है जिसका जन्म १५६४ में हुआ था। इसी प्रकार भाषाशास्त्र में और श : ३ अर्थशास्त्र के विभाग के और विभाजन में भी आनुतिथ प्रक्रिया का प्रयोग किया गया है।

भौगोलिक प्रक्रिया :—द्विविन्दु वर्गीकरण के कुछ वर्गों के विभाजन के लिये भौगोलिक अनुसूची की संख्याओं का भी प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिये प्रारम्भिक तीन भाषाओं को छोड़कर भाषा शास्त्र में अन्य भाषाओं की व्यवस्था भौगोलिक संख्याओं के अनुसार की गई है।

४ अन्य एशिया की भाषायें

६ अन्य अफ्रीका की भाषायें

यही ४ और ६ संख्यायें भौगोलिक अनुसूची में क्रमशः एशिया तथा अफ्रीका के लिये प्रयुक्त की गई हैं। इस प्रकार भौगोलिक प्रक्रिया द्वारा विभाजित किये जाने वालेअनुविन्यास में अपने आप ग्राहिता आ जाती है क्योंकि एक ही वर्ग संख्या को आवश्यकतानुसार भौगोलिक विभागों द्वारा कितना ही विभाजित किया जा सकता है।

वर्णाक्षर प्रक्रिया :— सत्व के प्रथम दो या प्रथम या प्रथम तीन वर्णाक्षरों का प्रयोग कर किसी वर्ग का विभाजन वर्णाक्षर प्रक्रिया द्वारा कर उसकी अनुसूची में ग्राहिता उत्पन्न की जा सकती है। द्विविन्दु वर्गीकरण में इसी प्रक्रिया द्वारा भ ३७ कृषि उपज का विभाजन कर वर्ग में ग्राहिता लाई गई है। इस प्रक्रिया का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। प्रायः जब विभाजन के लिए अन्य किसी प्रक्रिया का प्रयोग सम्भव नहीं होता तब इसे प्रयुक्त किया जाता है।

विषय वर्गीकरण में इसी सिद्धांत के आधार पर ही या इसी आवश्यकता के लिये किन्हीं दो वर्ग संख्याओं के बीच में बड़े-बड़े स्थान रिक्त छोड़ दिये गये हैं। विषय वर्गीकरण की अनुसूचियों में कुल लगभग १०,००० स्थान इसी हेतु रिक्त छोड़ दिये गये हैं। इतना होते हुये भी ज्ञानक्षेत्र की प्रकृति को देखते हुये यह सीमित संख्यायें बिलकुल अपर्याप्त हैं। इन स्थानों के रिक्त छोड़ देने से अनुसूची में जो अनावश्यक वृद्धि कर दी गई है वह भी ध्यान देने की बात है। कांग्रेस पुस्तकालय वर्गीकरण में भी ऐसी ही व्यवस्था पाई है। इससे यह सिद्ध हो जाता है। कि इन वर्गीकरणों में अनुविन्यास में ग्राहिता लाने की ओर कोई भी ठोस कदम नहीं लिया गया।

शृंखला में ग्राहिता :— इस सिद्धांत के अनुसार शृंखला में वर्गों का इस प्रकार निर्माण करना चाहिये कि किसी भी समय कितने ही नवीन वर्गों की शृंखला के अन्त में व्यवस्था की जा सके। उदाहरणार्थ

ज्ञान ०००

सामाजिक विज्ञान ३००

अर्थशास्त्र ३३०

श्रम ३३१

श्रमिक वर्ग ३३१·८

कार्यकाल ३३१·८१

दिन की लम्बाई ३३१ ८११

भिन्न देशों में ३३१·८१६
६३० से ६६६ की
तरह विभाजित

जिस प्रकार ज्ञान-क्षेत्र की अनिश्चितता तथा सतत सम्भावना के कारण अनुविन्यास में ग्राहिता आवश्यक होती है उसी प्रकार श्रृंखला में ग्राहिता भी आवश्यक हो जाती है। उपर्युक्त उदाहरण द्वारा इतना तो अवश्य सिद्ध हो जाता है कि दशमलव वर्गीकरण में श्रृंखला की ग्राहिता पर ध्यान दिया गया है परन्तु प्रायः अधिकतर वर्गों में ऐसी व्यवस्था नहीं हो पाती। यदि एक ग्रन्थ का विशिष्ट विषय (१६५५ में भारत में कृषि उद्योग-धंधों के श्रमिकों का कार्यकाल से अधिक श्रम) हो तो दशमलव वर्गीकरण में इसका समव्यापक अनुवाद नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि दशमलव वर्गीकरण की श्रृंखलाओं में उपयुक्त पर्याप्त ग्राहिता नहीं है। द्विविन्दु वर्गीकरण में इस बात पर विशेष ध्यान रखा गया है। द्विविन्दु वर्गीकरण में द्विविन्दु प्रक्रिया द्वारा कितने ही नवीन वर्गों की कभी भी व्यवस्था की जा सकती है। इसमें द्विविन्दु प्रक्रिया का श्रेय है। द्विविन्दु प्रक्रिया के साथ-साथ एक अन्य 'आत्म अभ्यानति प्रक्रिया' द्वारा भी इस वर्गीकरण में श्रृंखलाओं में और अधिक ग्राहिता आ गई है। द्विविन्दु वर्गीकरण के आधार पर :

स० ११५ नारी तथा

स १५३ मध्यम श्रेणी होता है। अब यदि ग्रन्थ का विशिष्ट विषय मध्यम श्रेणी की नारी है तो दोनों ही वर्ग संख्यायें एक ही अनुसूची की होने के कारण आत्म अभ्यानति प्रक्रिया द्वारा संयुक्त कर दी जाती हैं। इस प्रक्रिया में दो वर्ग संख्याओं के इस प्रकार के संयोग के लिए — का चिह्न प्रयोग में लाया जाता है। आत्म अभ्यानति प्रक्रिया के अनुसार "मध्यम श्रेणी की नारी" विशिष्ट विषय का द्विबिन्दु वर्गीकरण में निम्न अनुवाद हुआ :—

स १११—११३ मध्यम श्रेणी की नारी

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए दशमलव वर्गीकरण में ०००१ का प्रयोग करने की व्यवस्था की गई है। जब किसी विशिष्ट विषय की किसी अन्य विशिष्ट विषय की ओर अभिनति होती है तो सम व्यापक वर्गसंख्या के लिए ०००१ का प्रयोग करके उसके साथ वह वर्गसंख्या संयुक्त कर दी जाती है।

अन्य वर्गीकरण पद्धतियों में पूर्णाङ्क संकेतन के कारण शृंखला में ग्राहिता लाने का कोई अन्य मार्ग ही नहीं सिवाय इसके कि दो वर्ग-संख्याओं के बीच में बड़े-बड़े स्थान रिक्त छोड़ दिये जायें। इसी प्रकार अनुविन्यास में ग्राहिता लाने के लिए भी अन्य वर्गीकरण पद्धतियों में स्थान रिक्त छोड़ दिये गये हैं। स्थान रिक्त छोड़कर केवल सीमित ग्राहिता लाने का प्रयास हो सकता है परन्तु यह व्यवस्था स्थायी नहीं होती। साथ ही साथ अनुसूची में अनावश्यक वृद्धि भी हो जाती है।

स्मरणीयता का सिद्धांत—किसी वर्ग के विशेष सत्व को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त वर्गसंख्यायें, जहाँ भी इसी सत्व का इसी अर्थ में प्रयोग किया जाय, वही और वैसी ही प्रयुक्त की जानी चाहिए। आधुनिक वर्गीकरण में इन स्मरणीय संख्याओं का बड़ा महत्त्व है। क्योंकि स्मरणीयता के कारण बौद्धिक शक्ति का भी कम ह्रास होता है और कार्य में भी आसानी तथा शीघ्रता हो जाती है। इन स्मरणीय संख्याओं को दो प्रकार से युक्त किया जाता है :

(१) अनुसूचीकृत स्मरणीय संख्यायें

(२) व्यावहारिक स्मरणीय संख्यायें

अनुसूचीकृत स्मरणीय संख्यायें—वर्गीकरण में अनेक अनुसूचियों के निर्माण से, जिनमें सामान्य उपभेद या वर्गों या विभागों की वर्गसंख्यायें निर्धारित की जाती हैं, अनुसूचीकृत वर्ग संख्यायें बनती हैं। इनके उपर्युक्त आधार पर प्रयोग होने पर इनको स्मरणीय संख्यायें कहते हैं। दशमलव वर्गीकरण में :

(१) भौगोलिक अनुसूची
(२) उद्योग के विभाग
(३) भाषा के विभाग तथा
(४) सामान्य उपभेद

अनुसूचीकृत संख्याओं के उदाहरण हैं। सामान्य उपभेदों का प्रयोग कहीं भी किसी भी वर्ग या विभाग के साथ उसी एक वर्ग संख्या के संयोग से किया जा सकता है। इन संख्याओं को पृथक् करने के लिये इनके प्रथम ० का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार भौगोलिक संख्याओं का प्रयोग भी जहाँ वह वर्ग स्वयं भौगोलिक विशेषता से विभाजित नहीं होता है ०९ लगाकर किया जाता है। उदाहरण के लिये भारतीय राजनीति को व्यवस्थित करने के लिये

३२०·९५४ भारतीय राजनीति

का प्रयोग किया जायगा। इसमें भौगोलिक विभाग ५४ भारत को संयुक्त करने के लिये ०९ का प्रयोग किया गया है परन्तु राजकीय प्रबन्ध में भोगोलिक विभाग उस वर्ग को विभाजित करने के लिये प्रयुक्त किये गये हैं अतएव भारतीय शासन के लिये

३५४·५४ भारतीय शासन

प्रयुक्त किया जायगा नकि

३५४·०९५४ जिसका प्रयोग करना अशुद्ध होगा। भाषा के विभागों तथा साहित्य के विभागों का सामंजस्य बड़ा ही स्मरणीय तथा समान रूप है।

४००	भाषा	८००	साहित्य
४१०	अमेरिकन	८१०	अमेरिकन
४२०	आंग्ल	८२०	आंग्ल
४३०	जर्मन	८३०	जर्मन
४४०	फ्रांसीसी	८४०	फ्रांसीसी

इत्यादि

द्विविन्दु वर्गीकरण में भी निम्न स्मरणीय संख्याओं का प्रयोग किया गया है।

(१) भौगोलिक अनुसूची

(२) भाषा

(३) सामान्य उपभेद

(४) विषय प्रक्रिया द्वारा प्रयुक्त संख्यायें।

द्वि विन्दु वर्गीकरण में साहित्यिकों की भी स्मरणीय ढंग से व्यवस्था की गई है। साहित्य की विशेषताओं के आधार विभाजित करने से साहित्य के रूपों में तो परिवर्तन होता जाता है परन्तु यदि लेखक वही है तो उसकी संख्या वही और वैसे ही प्रयुक्त की जाती है। उदाहरणार्थ जय शंकर "प्रसाद" कवि, उपन्यासकार तथा नाटककार तीनों ही हैं। उनकी कामायनी तथा स्कन्धगुप्त और इरावती जो क्रमशः काव्य, नाटक तथा उपन्यास हैं, तीनों ही पुस्तकों को व्यवस्थित करने में केवल उनके स्वरूप में भेद हो जाता है। लेखक की जन्म तिथि के आधार पर लेखक की संख्या पड़ने के कारण संख्याओं में बड़ी समानता तथा स्मरणीयता आ जाती है।

द : ३ ढ ८३	प्रसाद के उपन्यास
द : २ ढ ८३	प्रसाद के नाटक
द : १ ढ ८३	प्रसाद के काव्य

सामान्य उपभेद समस्त वर्गों के साथ उसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। इसके लिये हिन्दी में अनुस्वार का प्रयोग तथा आंग्लभाषा में छोटे अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। भौगोलिक अनुसूची का तथा भाषा के विभागों का प्रयोग उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार दशमलव वर्गीकरण में।

अन्य व्यावहारिक स्मरणीय संख्यायें—इन संख्याओं के प्रयोग के लिये अनुसूचियों की वर्गसंख्याओं का प्रयोग नहीं किया जाता।

इसके लिये कुछ परिपाटियों तथा व्यवहार के अनुसार वर्ग संख्याओं का प्रयोग किया जाता है। अंक विज्ञान के आधार पर संख्या ० से ९ तक किसी नैसर्गिक विचार पर आधारित हैं। प्रायः १ ईश्वर के लिये प्रयुक्त किया जाता है क्योंकि ईश्वर आदिशक्ति माना जाता है और सभी स्थानों पर उसका प्रथम स्थान रहता है। इसी प्रकार संख्या ७ को अधिकतर व्यक्तित्व मूल्य या महत्त्व के अर्थ में तथा संख्या ५ को सौन्दर्य, नारी, संवेग, पानी, द्रव या सागर के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। यदि इन्हीं विचारों पर इन संख्याओं का वर्गीकरण में प्रयोग किया जाय तो वर्गीकरण करनेवाले तथा प्रयोक्ता दोनों को ही आसानी होगी। २३० प्रभुवाद में ईश्वर की व्यवस्था इसी प्रकार संख्या १ का प्रयोग करके २३१ में की गई है।

विषय वर्गीकरण में भी निम्न स्मरणीय संख्याओं का प्रयोग किया गया है :

(१) भौगोलिक संख्यायें

(२) भाषा

(३) कैटेगारिकल टेबिल

परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि कांग्रेस पुस्तकालय के वर्गीकरण में इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया है। पूरी अनुसूची में एक भी स्मरणीय संख्या का प्रयोग नहीं किया गया। प्रायः एक ही वर्ग के लिये भिन्न स्थानों पर भिन्न संख्यायें प्रयुक्त की गई हैं। यही कारण है कि कांग्रेस पुस्तकालय वर्गीकरण की पूरी अनुसूची विस्तृत पुनरावृत्ति से भरी पड़ी है।

नवमोच्छ्वास

ग्रन्थ व्यवस्था तथा ग्रन्थालय वर्गीकरण के विशेष सिद्धान्त

पूर्व उच्छ्वास में हमने देखा है कि ज्ञान के वर्गीकरण में :—

(१) असीमित बड़ी संख्या में वर्गों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(२) कभी और किसी भी समय कितने ही नवीन वर्गों के सृजन की सुविधा और जब भी आवश्यकता पड़े ऐसे नवीन वर्गों की व्यवस्था अन्य वर्तमान वर्गों के बीच बिना किसी अव्यवस्था के की जाने की सुविधा होनी चाहिए।

(३) उपर्युक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये ज्ञान वर्गीकरण निम्न तीन सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए।

(अ) अनुविन्यास में ग्राहिता।

(ब) शृङ्खला में ग्राहिता।

(स) स्मरणीयता।

ग्रन्थ व्यवस्थापनार्थ ग्रन्थालय वर्गीकरण का निर्माण किया जाता है। ग्रन्थालय वर्गीकरण में भी विभाजन का विषय ज्ञान क्षेत्र ही होता है क्योंकि ग्रन्थों में ज्ञान से उत्पन्न विचारों तथा कल्पनाओं का ही संग्रह होता है। ग्रन्थालय वर्गीकरण ग्रन्थ में व्यवस्थित ज्ञान का मूल वर्गीकरण होता है। ज्ञान के संग्रह से ग्रन्थों का प्रादुर्भाव होता है और इस प्रकार ग्रन्थालय वर्गीकरण स्वयं ज्ञान का वर्गीकरण होता है जिसमें :—

(१) सामान्य वर्ग।

(२) सामान्य उपभेद।

(३) संकेतन तथा

(४) अनुक्रमणिका होती हैं। इन्हीं की सहायता से ज्ञान वर्गीकरण ग्रन्थालय में ग्रन्थों की व्यवस्था हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है। वर्गीकरण पद्धति को ग्रन्थालय में ग्रन्थों की व्यवस्था के हेतु प्रायोगिक उपकरण बनाने के लिये ग्रन्थों की प्रकृति का अध्ययन करना भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। यदि किसी भी ग्रन्थ को ज्ञान के किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित माना जाता है तो ऐसे ग्रन्थ की व्यवस्था भी उसी क्रम में की जानी चाहिए जिस क्रम में ज्ञान की व्यवस्था की जाती है। ग्रन्थों की व्यवस्था के लिये ज्ञान की व्यवस्था के उत्तम क्रम के निष्पादन में प्रायः वर्गीकरण वाले भिन्न ही रहते हैं। इस समस्या का कभी भी समाधान करना सम्भव नहीं हो पाता लेकिन जिस क्रम में अधिक वर्गीकरण करने वालों द्वारा व्यवस्था की गई हो उसी क्रम में व्यवस्था की जानी चाहिए। परन्तु यदि विज्ञान क्षेत्रों में अन्वेषण द्वारा किसी समय किसी भी प्रकार का परिवर्तन हुआ तो यह मान्य क्रम भी परिवर्तित होकर रहेगा। केवल इतना ही हम कर सकते हैं कि अपने समय में विज्ञानवेत्ताओं तथा दार्शनिक द्वारा प्रयुक्त क्रम का सहारा लें। यह ध्यान में अवश्य रखना चाहिए कि जितनी ही हमारी पद्धति साधारण, सामान्य तथा लचीली होगी उतना ही परिवर्तन होने पर भी वह ठीक रहेगी।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि ग्रन्थों का वर्गीकरण ग्रन्थों के शारीरिक स्वरूप से उत्पन्न परिस्थितियों की व्यवस्था सहित ज्ञान का ही वर्गीकरण होता है। कोई भी ज्ञान वर्गीकरण ग्रन्थों की व्यवस्था के लिए उपयुक्त हो सकता है जिसमें।

(१) सामान्य या सर्व वर्ग (२) सामान्य उपभेद (३) संकेतन (४) अनुक्रमणिका की व्यवस्था होगी।

इस प्रकार ज्ञान के वर्गीकरण में यह स्पष्ट हो गया कि :

(अ) ज्ञानक्षेत्र में सदैव अनिश्चितता बनी रहती है। नवीन वर्गों या विषय क्षेत्रों का कभी भी प्रादुर्भाव हो सकता है।

(ब) ज्ञान के अनेक वर्ग या क्षेत्र कभी-कभी ऐसे भी रह जाते हैं जो साधारण व्यक्ति के ध्यान में आते ही नहीं। तथा

(स) संग्रहीत व्यवस्थित ज्ञान के मूर्त स्वरूप या आकार को ही ग्रन्थ की संज्ञा दी जाती है।

ये ज्ञानक्षेत्र की समस्त विशेषतायें ग्रन्थों में आ जाती हैं। जिसका सदैव नवीन सत्वों की उत्पत्ति से सतत विकास होता रहता है। इन सबसे ग्रन्थों में निम्न विशेषतायें आ जाती हैं :

(१) ग्रन्थ कलात्मक ढंग से तथा ज्ञान के भिन्न अंशों से निर्मित होत हैं।

(२) ग्रन्थ एक विशिष्ट विषय में भी पूर्ण व्यापक नहीं हो सकते। प्रायः अनेक ग्रन्थों में आंशिक समवबोध होता है।

(३) ग्रन्थों तथा उनकी प्रकृति में स्थानीय तथा राष्ट्रीय विभेद होता है।

(४) एक ही विषय पर अनेक दृष्टिकोणों तथा उद्देश्यों से ग्रन्थों की रचना की जाती है।

(५) अनेक प्राचीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी होते हैं जिन्हें हम यहाँ शास्त्रीय ग्रन्थ कहेंगे। इन ग्रन्थों पर अनेक ग्रन्थ लिखे जाते हैं, उनकी आलोचनात्मक विवेचना होती है तथा एक अच्छा साहित्य एक ही ग्रन्थ पर तैयार हो जाता है।

(६) अनेक सामान्य उपभेदात्मक ग्रन्थ भी होते हैं जिनके लिये सामान्य उपभेदों की भी आवश्यकता होती है।

(७) वर्गों में आनेवाली समस्त पुस्तकों का व्यष्टीकरण करना भी ग्रन्थालय वर्गीकरण के लिए अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

इन समस्याओं के लिए ग्रन्थालय वर्गीकरण में निम्न सिद्धांतों का प्रतिपालन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

आंशिक समवबोध का सिद्धांत—वर्गीकरण में प्रत्येक वर्ग के समूहगत विषयों की विभागों में पृथक्-पृथक् व्यवस्था की जाती है। दशमलव वर्गीकरण में गणित वर्ग के समूहगत विषयों की निम्न व्यवस्था की गई है।

५१०	गणित
५११	अंकगणित
५१२	बीजगणित
५१३	ज्यामिति
५१४	त्रिकोणमिति
५१५	वर्णनात्मक ज्यामिति
५१६	विश्लेषणात्मक ज्यामिति
५१७	वैगिकी
५१८	विशेष गतियाँ
५१९	ग्रहगणित

जहाँ तक इन सभी विभागों पर पृथक्-पृथक् ग्रन्थों का सम्बन्ध है उन्हें उनसे सम्बन्धित वर्गसंख्याओं द्वारा व्यवस्थित किया जा सकता है और जहाँ तक समस्त विभागों से सम्बन्धित ग्रन्थ की बात है उसे गणित के मुख्य वर्ग में व्यवस्थित किया जा सकता है। परन्तु यदि ग्रन्थ निम्न किन्हीं समूहों पर लिखा गया हो और आंशिक समवबोधित हो :

(१) अंकगणित, ज्यामिति तथा वैगिकी
(२) बीजगणित, ज्यामिति तथा वैगिकी
(३) वैगिकी, विश्लेषणात्मक ज्यामिति तथा त्रिकोणमिति
(४) त्रिकोणमिति तथा बीजगणित
(५) बीजगणित, त्रिकोणमिति तथा ग्रहगणित इत्यादि

तो इनकी व्यवस्था किस स्थान पर किस विभाग में की जाय। किसी

भी एक विभाग में इनकी व्यवस्था करना या वर्ग गणित में ही इनकी व्यवस्था करना भी अत्यन्त कठिन तथा अनुचित है। इसलिये ग्रंथालय वर्गीकरण में प्रत्येक अनुविन्यास के साथ-साथ कुछ ऐसे भी वर्ग या विभाग होने चाहिये जिनको उपर्युक्त आवश्यकता के अनुसार प्रयुक्त किया जा सके। उपर्युक्त प्रत्येक समूह अनुविन्यास से आंशिक समवबोध रखता है। यदि ऐसे ही समूह वर्गों की व्यवस्था वर्गीकरण में की जा सके तो इनमें ही इन समूहों को व्यवस्थित करना उचित होगा ।

इसी प्रकार कलात्मक भिन्न अंशों द्वारा निर्मित ग्रन्थों में भी कठिनाई होती है। सरस्वती भवन पाठ्यमाला के अन्तर्गत अद्वैत सिद्धान्त के ऊपर एक ग्रन्थ तथा दूसरा नरसिंह विज्ञापन नामक ग्रन्थ एक ही प्रति में भिन्न शीर्ष पृष्ठों तथा भिन्न पृष्ठक्रम में निकाला गया है। ऐसी दशा में वर्गीकरण के लिये हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके द्वारा ऐसे ग्रन्थों की व्यवस्था की जा सके।

अतएव आंशिक समवबोध के सिद्धांत के आधार पर प्रत्येक अनुसूची में भिन्न वर्गों के साथ-साथ कुछ ऐसे वर्गों की भी व्यवस्था होनी चाहिये जो ऐसे ग्रंथों की व्यवस्था के लिये उपयुक्त हों। प्रायः इस कमी को पूरा करने के लिये प्रत्येक वर्गीकरण कैंप में सूचीकरण का सहारा लिया जाता है। पुस्तक में संग्रहीत विभागों में से प्रथम विषय की वर्ग-संख्या तो ग्रन्थ को व्यवस्थित करने के लिये प्रयुक्त कर ली जाती है और शेष विषयों के लिये सूचीकरण में निर्देश कर दिया जाता है।

स्थानीय परिवर्तन का सिद्धांत—वर्गीकरण के लक्ष्य तथा प्रकारों में प्रायः स्थानीय तथा देशगत अनेक भेद उत्पन्न हो जाते हैं। प्रत्येक स्थान या देश की संस्कृति, व्यवहार, उपयोग तथा भाषा और साहित्य में अन्य प्रत्येक देश से समानता नहीं हो पाती। विभिन्न देशों के पाठकों की रुचियों तथा आदर्शों में स्वभावतः यह भेद पाया जाता है। प्रत्येक अपने देश तथा अपनी भाषा को अधिक श्रेष्ठ मानता है। ग्रन्थों की

व्यवस्था करने में उन्हें पाठकों के लिये अधिक से अधिक उपयोगी वनाने के लिये उनकी आवश्यकतानुसार चलना पड़ता है। अतएव स्थानीय परिवर्तन के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक वर्गीकरण अनुसूची में ऐसी कुछ व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये जिससे स्थानीय तथा देश-गत रुचि और उपयोगिता के अनुसार व्यवस्था की जा सके।

द्विविन्दु वर्गीकरण में डा० रंगनाथन ने इस सिद्धांत को ध्यान में रखते हुये भौगोलिक अनुसूची में

१ विश्व
२ जन्मभूमि
३ पक्षपोषित देश
४ एशिया इत्यादि

प्रथम तीन वर्ग संख्याओं में परिवर्तनशील वर्गों की व्यवस्था की गई है। संख्या ४ से लेकर ९९ तक विश्व के समस्त अन्य देशों की व्यवस्था की गई है। परन्तु संख्या दो जन्मभूमि के लिये तथा संख्या तीन पक्षपोषित देश के लिये प्रयुक्त की जाती है। प्रत्येक देश में इस वर्गीकरण के आधार पर ऐसे देश के लिये संख्या २ का प्रयोग किया जायगा। भारत के लिये द्विविन्दु वर्गीकरण से वर्गीकरण करते समय भौगोलिक अनुसूची के अनुसार संख्या ४४ का प्रयोग न करके २ का प्रयोग किया जायगा और इंग्लैंड के लिये जो हमारा पक्षपोषित या विशेष सम्बन्धित देश है संख्या ५६१ न प्रयोग करके संख्या ३ का प्रयोग किया जायगा। इसी प्रकार अन्य प्रत्येक देशों में द्विविन्दु वर्गी-करण के आधार पर वर्गीकरण करते समय उस देश के लिये संख्या २ का तथा पक्षपोषित देश के लिये संख्या ३ का प्रयोग किया जायगा। उदाहरण के लिये भारत में विशिष्ट विषय 'भारत का राजनीतिक इतिहास (सन् १२३६ तक)' व्यवस्थित करने के लिये

ल २ : १ घ ३ का प्रयोग किया जायगा। ल वर्ग इतिहास को

(भौगोलिक) : (समस्या) : (आनुतिथ)

विशेषताओं से विभाजित किया जाता है और वर्ग के साथ-साथ वर्ग के भौगोलिक विभाजन के लिये भारत की भौगोलिक संख्या ४४ का प्रयोग न करके जन्मभूमि २ का प्रयोग किया जाता है।

साहित्य में ग्रन्थों की व्यवस्था करते समय भी द्विविन्दु वर्गीकरण के अनुसार स्थानीय परिवर्तन सम्भव है। उस विशेष पक्षपोषित भाषा के लिये जिसमें ग्रन्थालय के अधिकांश ग्रन्थ लिखे गये हैं या जो मातृभाषा होने के नाते विशेष महत्त्व दी जाती है भाषा अनुसूची के आधार पर संख्या नहीं लिखी जाती। इस प्रकार एक संख्या की बचत होकर संकेतन भी संक्षिप्त हो जाता है। भारत में प्रायः अधिकतर पुस्तकालयों में अभी आंग्लभाषा में लिखे गये ग्रन्थों की अधिकता है अतएव यहाँ आंग्लभाषा की संख्या नहीं डालनी पड़ती।

द्विविन्दु वर्गीकरण के अतिरिक्त दशमलव या अन्य वर्गीकरणों में न इस सम्बन्ध में कोई व्यवस्था की गई है और न स्थानीय परिवर्तन के सिद्धांत को कोई ऐसा महत्त्व ही दिया गया है।

दृष्टिकोण का सिद्धांत—प्रायः एक ही विषय पर भिन्न उद्देश्य तथा दृष्टिकोण से लिखे गये ग्रन्थ पाये जाते हैं। ऐसे ग्रन्थों की व्यवस्था भी उन्हीं ग्रन्थों के साथ करने से जिनका लक्ष्य सामान्य विवेचना या साधारण वर्णन हो उनकी उपयोगिता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। इस प्रकार विषय के समस्त ग्रन्थों को एक साथ व्यवस्थित करने से उनका यह भेद वर्गसंख्या में व्याप्त नहीं हो पाता। वास्तव में यह कहना अधिक उचित होगा कि वे वर्गसंख्यायें ग्रन्थ के विशिष्ट विषय के समव्यापक नहीं होतीं। किसी भी विशिष्ट विषय पर

(१) भिन्न दृष्टिकोण से

(२) भिन्न विशिष्ट विलयों के दृष्टिकोण से

(३) भिन्न पाठकों या शिक्षकों को ध्यान में रखते हुये ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। उपर्युक्त दृष्टिकोणों से लिखे गये ग्रन्थों की व्यवस्था किसी प्रक्रिया से ऐसी की जानी चाहिये जिससे उनकी वर्गसंख्या समव्यापक हो सके और विशिष्ट विषय की उपयोगिता में हानि न होने पाये। इस सिद्धांत को दृष्टिकोण का सिद्धांत कहते हैं। उदाहरण के लिये

मनोविज्ञान	शिक्षा के दृष्टिकोण से
,,	कला के दृष्टिकोण से
,,	यन्त्रकला के उद्देश्य से
,,	आयुःशास्त्र के उद्देश्य से

उदाहरण के अनुसार मनोविज्ञान के विषय पर ही चार प्रकार के ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। इन चारों प्रकार के ग्रन्थों की उपयोगिता को नष्ट न होने देने के लिये इनकी वर्गीकरण में चार प्रकार से व्यवस्था की जानी चाहिये अन्यथा इनकी वर्ग संख्या भी विषय के सम व्यापक न होगी। दशमलव वर्गीकरण में दृष्टिकोण व्यक्त करने के लिये ०००१ संयोजक संख्या का प्रयोग किया जाता है। इसके आधार पर उपर्युक्त विषयों का व्यवस्थापन क्रमशः इस प्रकार किया जायगा।

१५०.०० १३७

१५०.००१७

१५०.००१६२

१५०.००१६१

द्विविन्दु वर्गीकरण में अभ्यानति प्रक्रिया द्वारा इस सिद्धान्त का पालन किया जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा वे समस्त ग्रन्थ वर्ग में एक स्थान पर आ जाते हैं जो किसी विशेष उद्देश्य या विषय के दृष्टिकोण से लिखे जाते हैं। ग्रन्थों की व्यवस्था सदैव मूल वर्ग में ही की जाती है इस प्रक्रिया द्वारा मूल वर्ग में एक ० संकेत द्वारा अभिनत वर्ग की संख्या

संयुक्त कर दी जाती है। यह संकेत दशमलव वर्गीकरण की अपेक्षा संक्षिप्त है। उपर्युक्त ग्रन्थों की ही द्विविन्दु वर्गीकरण के आधार पर निम्न व्यवस्था की जायगी :—

भ० म

भ० ढ

भ० ख

भ० ड

इन वर्गीकरणों के अतिरिक्त अन्य वर्गीकरणों में इस सम्बन्ध में कोई व्यवस्था नहीं की गयी जिससे पर्याप्त रूप से इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर किसी भी ग्रन्थ की व्यवस्था की जा सके।

स्थायी महत्त्वशाली ग्रन्थों का सिद्धान्त :—इस सिद्धान्त की विवेचना से पहले स्थायी महत्त्वशाली ग्रन्थ क्या है यह स्पष्ट हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। एक साधारण वर्गीकरण करने वाले की परिभाषा में हम यह कह सकते हैं कि ऐसा ग्रन्थ जिस ग्रन्थ पर अनेक ग्रन्थ या साहित्य लिखा जाय स्थायी महत्त्वशाली ग्रन्थ कहलाता है। परन्तु इतनी सी परिभाषा बड़ी अस्पष्ट तथा भ्रमोत्पादक है। प्रत्येक ग्रन्थ जिस पर अनेक ग्रन्थ या साहित्य लिखा जाय स्थायी महत्वशाली ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। स्थायी महत्त्वशाली ग्रन्थ—जिस पर अन्य साहित्य या ग्रन्थ लिखे जायँ—में निम्न आन्तरिक विशेषतायें होती हैं।

(१) इसका स्थायी महत्त्व होता है।

(२) यह लेखक के व्यक्तित्व से पूर्णरूपेण प्रभावित होता है जो स्वयं एक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली लेखक होता है।

(३) यह सदैव नवीन विषय क्षेत्रों को उत्पन्न करने वाला प्राथमिक ग्रन्थ होता है।

किसी भी धर्म के मूल पवित्र ग्रन्थ इसी प्रकार के होते हैं। प्रत्येक वर्गीकरण पद्धति इनकी महत्त्वशीलता को स्वीकार करती है। यह स्वयं एक वर्ग के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। इसलिये एक ही स्थान

पर यह ग्रन्थ तथा इससे सम्बन्धित अन्य ग्रन्थ तथा साहित्य व्यवस्थित किया जा सकता है। कवियों, नाटककारों, उपन्यासकारों तथा अन्य उच्चकोटि के साहित्यकारों के ग्रन्थ प्रायः इसी प्रकार के होते हैं लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि केवल धर्म या साहित्य में ही इस प्रकार के ग्रन्थ पाये जाते हैं। किसी भी अन्य वर्ग में इस प्रकार के स्थायी महत्त्वशाली ग्रन्थ सम्भव हो सकते हैं। यहाँ तक कि ग्रीक दर्शन संस्कृत भाषा अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा अंकगणित इत्यादि छोटे-छोटे वर्गों में भी इस प्रकार के ग्रन्थों का आधिक्य है।

शास्त्रीय सिद्धान्त के आधार पर प्रत्येक ऐसा ग्रन्थ, उसके उप ग्रन्थ, विवेचनायें तथा आलोचनायें और अन्य समस्त साहित्य एक ही स्थान पर व्यवस्थित किये जाने चाहिये। यहाँ यह अधिक उत्तम होगा कि स्थायी महत्त्वशाली ग्रन्थों के सिद्धान्त के लिये शास्त्रीय सिद्धान्त का प्रयोग किया जाय। इस सिद्धान्त के पालन करने के लिये तथा ऐसे ग्रन्थों की द्विविन्दु वर्गीकरण के अनुसार व्यवस्था करने के लिये हम शास्त्रीय प्रक्रिया का ही प्रयोग करते हैं। जिस समस्या के समाधान करने के लिये इस प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है वह अधिकतर संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में आती है। इस प्रक्रिया के आधार पर ऐसा प्रत्येक ग्रन्थ एक पृथक् वर्ग बन जाता है। फिर उस वर्ग में आने वाले अन्य ग्रन्थों तथा उपग्रन्थों की व्यवस्था या तो आनुतिथि या पक्षपोषित समूह प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इस प्रकार ऐसे ग्रन्थों की व्यवस्था भी हो जाती है और साधारण ग्रन्थों से उनकी विशिष्टतानुसार पृथक् वर्ग भी बन जाता है। उचित नहीं कहा जा सकता कि सिद्धान्त कौमुदी' या दण्डिन् का 'काव्यादर्श' अन्य साधारण ग्रन्थों के साथ व्यवस्थित किया जाय और उनकी विवेचनाओं को उनसे पृथक् कर दिया जाय।

उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार यदि इन ग्रन्थों की व्यवस्था की जाय और इसके लिये आनुतिथ प्रकिया का उपयोग किया जाय तो सभी

आलोचनायें तथा उपआलोचनायें अपने सृजन के आधार पर उद्विकासी क्रम में व्यवस्थित हो जायेंगी। अतएव अनुकूल क्रम में ऐसे ग्रन्थों की व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि इनकी शास्त्रीय प्रक्रिया द्वारा आनुतिथ क्रम से व्यवस्था की जाय।

सामान्य उपभेद तथा व्यवच्छेदकता का सिद्धांत—यह तो कई बार कहा जा चुका है कि ज्ञान वर्गीकरण का ही ग्रन्थ या ग्रन्थालय वर्गीकरण के लिये प्रयोग किया जाता है। लेकिन ज्ञान वर्गीकरण के ग्रन्थ वर्गीकरण में प्रयोग हेतु अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी अनिवार्य होती है। इन आवश्यकताओं में सामान्य उपभेद भी आ जाते हैं। इसलिये प्रत्येक ग्रन्थालय वर्गीकरण में एक सामान्य उपभेदों की सूची अनिवार्यत: होना चाहिये जिसके द्वारा एक ही वर्ग की पुस्तकों को उनके विचार व्यक्त करने के स्वरूप के आधार पर वर्गीकृत किया जा सके। इन सामान्य उपभेदों को किसी भी वर्गसंख्या के साथ प्रयुक्त किया जा सकता है।

परिभाषा के रूप में हम यह कह सकते हैं कि ग्रन्थालय हेतु प्रयुक्त ग्रन्थ वर्गीकरण में सामान्य उपभेदों की अनुसूची का होना अनिवार्य है क्योंकि ज्ञान के वर्गों को ग्रन्थ के भावों को व्यक्त करने के स्वरूप के आधार पर व्यवस्थित करना अत्यन्त लाभप्रद तथा आवश्यक होता है।

इस अनुसूची और ज्ञान वर्गीकरण की अनुसूची के संकेतनों में सदैव भिन्नता रहनी चाहिये। दशमलव वर्गीकरण में इस प्रकार अपेक्षित भिन्नता लाने के लिये सामान्य उपभेदों की संख्याओं के पहले शून्य का प्रयोग किया गया है:

०१	सिद्धांत
०२	संक्षिप्त, पाठ्य पुस्तक
०३	कोष, विश्व कोष

०४ लेख

०५ पत्रिकायें इत्यादि।

द्विविन्दु वर्गीकरण में सामान्य उपभेदों के संकेतन में विभिन्नता लाने के लिये उन्हें आंग्ल भाषा के छोटे अक्षरों से प्रकट किया गया है। हिन्दी में सामान्य उपभेदों के संकेतन में अक्षरों में अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है।

इं वाङ्मय सूची

उं व्यवसाय

कं प्रयोगशाला

खं प्रदर्शनी

घं मानचित्र इत्यादि।

संकेतन में विभिन्नता लाने के लिये प्रयुक्त किये गये सिद्धांत को व्यवच्छेदकता का सिद्धांत कहते हैं। यह सिद्धांत भी सामान्य उपभेद के सिद्धांत का ही एक भेद होने के कारण एक साथ इसकी व्याख्या की गई है। इस प्रकार ज्ञान वर्गीकरण के ग्रंथ व्यवस्थापनार्थ प्रयोग हेतु सामान्य उपभेद का सिद्धांत आवश्यक होता है और सामान्य उपभेदों के प्रयोग हेतु व्यवच्छेदकता का सिद्धांत आवश्यक होता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो सामान्य उपभेद और ज्ञान वर्गीकरण के संकेतन में कोई भेद न रह जायगा।

व्यष्टिकरण का सिद्धांत—समग्र ज्ञानक्षेत्र को वर्गीकरण द्वारा पृथक्-पृथक् वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है। इससे ज्ञानक्षेत्र की व्यवस्था तो हो जाती है। और वर्गों, विभागों तथा उपविभागों में ज्ञानक्षेत्र विभाजित हो जाता है परन्तु जब ज्ञान वर्गीकरण को ग्रंथालय वर्गीकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तब ग्रंथों के वर्गीकरण के बाद एक-एक वर्ग में अनेकानेक ग्रंथ एकत्रित हो जाते हैं। फलक पर इन ग्रन्थों की व्यवस्था तो वर्गों के आधार पर हो जाती है परन्तु एक

ही विषय के अनेक ग्रंथ एक ही वर्गसंख्या में व्यवस्थित होने के कारण व्यक्तिगत रूप से आपस में व्यवस्थित नहीं हो पाते। अतएव व्यष्टि-करण के सिद्धांत के अनुसार वर्गांक के साथ ग्रंथांक का भी प्रयोग करना पड़ता है। इन दोनों को ही मिलाकर ग्रंथ की अभियाचन संख्या बनती है।

ग्रन्थों के वर्गीकरण के वाद फलक पर ग्रन्थों की पृथक्-पृथक् व्यवस्था करना तथा उनके क्रम में उनका एक निश्चित स्थायी स्थान निर्धारण करने के लिये ग्रंथांक की आवश्यकता होती है। पुस्तक का ग्रन्थांक उसी वर्गांक वाले अनेक ग्रंथों के समक्ष उस ग्रन्थ का व्यष्टि-करण कर देता है। ग्रन्थांक पुस्तक के विशिष्ट गुणों का क्रमिक संख्याओं को कला प्रसूत भाषा में अनुवाद होता है जो ग्रन्थ के विषय से भिन्न होती हैं। सामान्य ग्रन्थालयों में एक ही वर्ग के ग्रन्थों को लेखक की संज्ञा के प्रथम अक्षर से वर्णक्रमानुगत व्यवस्थित करना अधिक श्रेयस्कर सिद्ध हुआ है। इसके लिये अनेक विद्वानों ने अनु-सूचियाँ तैयार की हैं। कटर, मेरिल, जास्ट तथा अन्य लेखक संख्याओं का उल्लेख किया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने ग्रन्थों के प्रथम प्रकाशन की तिथि से भी उनकी व्यवस्था करने का भी मार्ग अपनाया है। यह ढंग तो ठीक है लेकिन पाठकों के लिये जितना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का लेखक होता है उतना ग्रन्थ के प्रकाशन की तिथि नहीं। कुछ ग्रन्थों तथा पाठकों के सम्बन्ध में यह अत्युक्ति भी हो सकती है।

प्रायः वर्गीकरण की अनुसूचियों के साथ-साथ ग्रन्थांक की अनु-सूचियाँ भी पाई जाती हैं परन्तु अधिकांश में ग्रन्थांक अनुसूची का अभाव है। इसी कारण पृथक् ग्रन्थांक अनुसूचियाँ भी पाई जाती हैं। कटर सैन्बर्न अनुसूची इसी प्रकार का उदाहरण है। द्विविन्दु वर्गीकरण में वर्गीकरण की अनुसूची के साथ ही साथ ग्रन्थांक अनुसूची की भी व्यवस्था की गई है। इसमें ग्रन्थांक के लिये ग्रन्थ की प्रथम प्रकाशन की तिथि का प्रयोग किया गया है जो लेखक द्वारा अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध की

गई है। आजकल पाठक नवीन ग्रन्थों की खोज में रहते हैं और प्रायः विज्ञान तथा अन्वेषणात्मक विषयों में नवीन ग्रन्थों का महत्त्व भी अधिक होता है। द्विविन्दु वर्गीकरण के अनुसार ग्रंथांक निम्न में किसी भाग या कुछ पर आधारित होता है।

(१) भाषा (२) तिथि
(३) परिग्रहण (४) भाग
(५) पूरक संख्या (६) आलोचना
(७) आलोचना का परिग्रहण अंक (८) ग्रन्थ संख्या

विस्को ने कुछ आनुतिथि से सम्बन्वित अंकों का प्रयोग किया है। ग्रन्थ शताब्दियों के हिसाब से एक क्रम में रखे जाते हैं। अति नवीन गन्थ सबसे अन्त में आता है। इन्हें वर्णाक्षरों के भिन्न संयोग से व्यवस्थित किया जाता है।

व्यष्टिकरण के सिद्धांत का तात्पर्य यह है कि गन्थ वर्गीकरण के बाद एक ही वर्ग के अनेक ग्रन्थों को स्थायी स्थान देने तथा उनका व्यष्टिकरण करने के लिये ग्रन्थांक का उपयोग किया जाना चाहिये। इसके अनुसार ग्रन्थ का व्यष्टिकरण करना अनिवार्य है।

परिशिष्ट १

वर्गीकरण निर्माण तथा ज्ञान वर्गीकरण के ग्रन्थालय वर्गीकरण के लिये उपयोग किये जाने पर अभी तक विचार किया गया है और इस सम्बन्ध में २८ सिद्धांतों की विवेचना की गयी है। परन्तु केवल मात्र अनुसूची बना लेने से ही या उसके उपयोग के लिये सिद्धान्तों का निर्माण कर लेने से ही अभीष्ट की पूर्ति नहीं हो जाती। श्री रिचार्डसन के अनुसार अभी पुस्तकाध्यक्ष के कार्य के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू पर विचार नहीं किया गया और वह है वर्गीकरण अनुसूची में ग्रन्थों की व्यवस्था। इस सम्बन्ध में वर्गीकरण का सामान्य तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जो सभी पूर्व सिद्धान्तों तथा नियमों से बढ़कर है यह है :

"वर्गीकरण करने का समस्त कार्य ग्रन्थालय के पाठकों की सुविधानुसार होना चाहिये अर्थात् प्रत्येक ग्रन्थ की ऐसे स्थान पर व्यवस्था की जानी चाहिये जहाँ उसका अधिकतम उपयोग हो।"

यह एक ऐसा सार्वभौम सिद्धान्त है जो वर्गीकरण करने में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। यदि पुस्तकाध्यक्ष ग्रन्थालय पंचसूत्र का उल्लंघन नहीं करता तो उसे इसका ध्यान रखना ही होगा। पाठकों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं, बौद्धिक एषणाओं तथा ज्ञानपिपासा की पूर्ति करना ही ग्रन्थालय का उद्देश्य होता है। इसे ध्यान में रखते हुए हमें ग्रन्थालय वर्गीकरण में इस बात पर अधिक बल देना चाहिये कि ग्रन्थों की व्यवस्था उनकी उपयोगिता के आधार पर की जाय। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि पुस्तकों की व्यवस्था का कोई मान्य क्रम ही ही न रहे। ग्रन्थ की उपयोगिता के लिए व्यक्तिगत रुचियों तथा उपयोगों को ध्यान से निकाल ही देना चाहिये। वास्तव में एक ही प्रकार के तथा एक सत्व के विभिन्न ग्रन्थ एक ही साथ रखे जायें ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये और साथ ही ऐसी व्यवस्था भी कर देना चाहिये जिससे पाठक आसानी से ग्रन्थ के स्थान की कल्पना कर सकें।

उपर्युक्त सामान्य सिद्धान्त के अनुसार व्यवस्था करना तो श्रेयस्कर होगा ही साथ ही, यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वर्गीकरण के क्रम में अन्य आवश्यकताओं की भी अनावश्यक उपेक्षा न हो। इस सम्बन्ध में श्री मलविल डेवी ने अपने दशमलव वर्गीकरण के १४वें संस्करण की वृहत् भूमिका में अनेक नियमों की व्याख्या की है। उनका संक्षिप्त रूप से यहाँ उल्लेख किया जाता है :

(१) साहित्य तथा सर्व वर्ग को छोड़कर जिनमें ग्रन्थ का स्वरूप अधिक महत्त्वपूर्ण होता है अन्य सभी ग्रन्थों को पहले उनके विशिष्ट विषय के आधार पर विभाजित करना चाहिये बाद में स्वरूप के अनुसार। इस प्रकार

(अ) किसी विषय का इतिहास उस विषय के साथ रखा जाता है।

(ब) किसी विषय का विधि या नियम उस विषय के साथ रखा जाता है।

(स) किसी विषय का लेखा कार्य उस विषय के साथ रखा जाता है।

(२) ग्रन्थ अपने विशिष्ट विषय के अत्यन्त विशिष्ट स्थान पर रखा जाना चाहिये। इसके स्पष्टीकरण के लिये ग्रन्थ के उद्देश्य तथा उसके लेखक की विचारधारा का अध्ययन आवश्यक है। लेखक के उद्देश्य से ही कभी-कभी ग्रन्थ का विषय विशिष्ट बन जाता है। यही कारण है एक ही विषय पर अनेक प्रकार के ग्रन्थ पाये जाते हैं।

(३) अनेक बार ऐसी समस्यायें भी उत्पन्न हो जाती हैं कि एक ही ग्रन्थ वर्गीकरण अनुसूची के एक से अधिक स्थानों पर व्यवस्थित हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में यह निश्चित निर्णय कर लेना चाहिये कि ग्रन्थ किस स्थान पर व्यवस्थित किया जाय। इन परिस्थितियों में ग्रन्थ में अन्तर्निहित विषय का स्पष्टीकरण आवश्यक है। वर्गीकरण के इन वर्गों में से जिस वर्ग का सत्व ग्रन्थ में अधिक पूर्णतया वर्णित हो ग्रन्थ की व्यवस्था उस विषय में की जानी चाहिये। अन्य विषयों का उल्लेख अन्त-

विषयी संलेख द्वारा कर देना चाहिये। अधिक स्पष्टीकरण के लिये निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये :

(१) लेखक का आन्तरिक उद्देश्य

(२) वह विषय जिसका वह ख्यातिप्राप्त लेखक है अथवा जिस विषय पर लेखक ने अधिक ग्रन्थ लिखे हों।

(३) शीर्षक का प्रभाव

(४) जब कोई ग्रन्थ एक ही विषय के एक से अधिक विभागों से सम्बन्धित हो तो ऐसे सामान्य शीर्षक में इनकी व्यवस्था की जानी चाहिये जो इन सभी को अन्तर्विष्ट करता हो।

(५) जब कोई ऐसा ग्रंथ वर्गीकरण करने के लिये आ जाय जिसका वर्गीकरण अनुसूची में कोई उल्लेख न किया गया हो तो पहले ऐसे विषय के शीर्षक को ढूँढ़ना चाहिये जो इससे अत्यन्त निकट हो। उसी के अन्तर्गत इसका भी एक स्थान निर्धारित कर लेना चाहिये। परन्तु ऐसा तब तक न करना चाहिये जब तक आप इस विषय पर पूर्ण निश्चित न हो कि विषय बिलकुल ही नवीन है और इसका कोई भी पर्यायवाची शब्द अनुसूची में प्रयुक्त नहीं हो चुका है।

(६) ऐसी व्यवस्था किसी भी विषय की न करनी चाहिये जो आलोचनात्मक प्रकृति की हो।

(७) ऐसे विषयों को अनुक्रमणिका में लिख देना चाहिये जिनको पहले से नहीं लिखा गया हो और अपने व्यवहार के अनुसार पृथक् अनुक्रमणिका भी आवश्यकतानुसार बना लेनी चाहिये।

(८) जब तक अधिक आवश्यक न हो अधिक विशिष्टता की ओर न जाना चाहिये।

(९) जिस ग्रन्थ की जिस स्थान पर आप व्यवस्था करना अधिक आवश्यक तथा लाभप्रद समझते हों उस स्थान पर उसकी व्यवस्था कीजिये परन्तु निरुद्देश्य वर्गीकरण अनुसूची के विरुद्ध व्यवस्था की कोई आवश्यकता नहीं। जब आप प्रमाणों के आधार पर इस व्यवस्था को सिद्ध कर सकें तभी ऐसा करें।

कृतज्ञता प्रकाशन

इस पुस्तिका के लिखने में मुझे निम्न ग्रन्थों तथा उनके लेखकों के अमूल्य विचारों का सहयोग प्राप्त हुआ है अतएव मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

डा० रंगनाथन—एलीमेन्ट्स आव लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन।

प्रोलेगोमेना टु लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन।

फन्डामेन्टल एण्ड प्रोसीजर

ग्रन्थालय प्रक्रिया

द्विबिन्दु वर्गीकरण, तृतीय संस्करण तथा चतुर्थ संस्करण

श्री डब्ल्यू० सी० बी० सेअर्स—इन्ट्रोडक्शन टु लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन

मैनुअल आव लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन

श्री पामर ऐण्ड वेल्स—फन्डामेन्टल्स आव लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन

श्री आर० एस० पारखी—प्रिन्सिपुल्स आव लाइब्रेरी क्लासीफिकेशन

श्री फिलिप्स—प्राइमर आव बुक क्लासीफिकेशन

श्रीमलविल डेवी—दशमलव वर्गीकरण, १४ वाँ तथा १५ वाँ संस्करण

श्री यच० ई० ब्लिस—आरगेनिजेशन आव नालेज इन लाइब्रेरीज

श्री मारगेरेट मान—इन्ट्रोडक्शन टु कैटेलागिंग ऐण्ड दि क्लासीफिकेशन आव बुक्स

श्री मेरिल—कोड फार क्लासीफायर्स

इसके अतिरिक्त इंडियन लाइब्रेरियन, पुस्तकालय संदेश तथा अन्य

पत्रिकाओं के लेखों का भी सहयोग कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया जाता है।

अपने परम पूज्य गुरुवर श्री दर्भा सुब्रमन्यम् का आभार मैं प्रकट नहीं कर सकता जिनकी दिव्य ज्योति द्वारा समय समय पर मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है।

पूज्य श्री सी० जी० विश्वनाथन जी का आभार प्रकट करने के लिये मुझमें शाब्दिक शक्ति नहीं है।

इसके अतिरिक्त मैं उन सभी अपने सहयोगियों के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिनसे मुझे इसके सम्बन्ध में सहयोग प्राप्त हुआ है।

लेखक

GLOSSARY

अ

अपवर्जिता	Exclusiveness
अमूर्त	Abstract
अवशिष्ट सत्व वर्ग	Recidual Classes
अन्य	Others
अष्टक संकेतन	Octavedevice
अभ्यानति अंक प्रक्रिया	Bias number device
अनुविन्यास	Array
अपृष्ठवंशिनः	Invertebrata
अतिच्छादी	Overlapping
अनधिवासनशील	Unaccomodating
अनुक्रमणिका	Index
असम्बद्ध श्रृङ्खला	Loose Chain
अभिनत	Biased
अनसूचीकृत	Scheduled
अनुसमूह	Sub group

आ

आसङ्ग	Openaccess
आप्तक्रम	Canonical Order
आनुतिथि क्रम	Chronological Order

आपरिवर्तनशीलता	Modulation
आशुलिपि चिह्न	Shorthand Sign
आत्म अभ्यानति प्रक्रिया	Auto bias device
आंशिक समवबोध	Partial Comprehension

इ

इयत्तात्मक	Quantitative

उ

उच्च क्रम	Higher order
उन्मुक्त अनुविन्यास	Open arrays
उद्विकासी क्रम	Evolutionary order
उपासङ्ग	Adjuncts

क

कृत्रिम भाषा	Artificial language
क्रामक संख्या	Call Number
क्रम संख्या	Ordinal Number
काल	Temporal

ख

खंड	Scheduled, listed

ग

ग्रन्थांक	Book Number
ग्राहिता	Hospitality
ग्रन्थालय पञ्चसूत्र	Five Laws of Lib. Science

घ

घन	Cubic

च

चतुः	Quadric

ज

जाति	Species

द

द्वन्द्भाजन प्रणाली	Dichotomy
दृढ़ता	Consistency
दृष्टिकोण	Viewpoint
दृढ़	Consistent

न

निर्देशन	Enumeration
निःशेषता	Exhaustiveness

प

प्रक्रिया	Device
प्राथमिक श्रृङ्खला	Primary Chain
पैत्रिक बन्धुत्व	Lineal Kinship
प्रचलन	Currancy
प्रसङ्ग	Context
प्रजाति	Genus

प्रजीवा	Protozoa
पक्षपोषित	Favoured

फ

फलक	Shelf
फलक वर्गीकरण	Bibliothecal Clasification

भ

भौगोलिक प्रक्रिया	Geographical Device

म

मिश्रित संकेतन	Mixed Notation
मूर्त	Concrete
मूर्तवृद्धि	Increasing concretness

ल

लचीलापन	Flexibility

व

विभेद	Differentiation
व्यापक वर्गीकरण	Expansive Clasification
विषय वर्गीकरण	Subject Clasification
वांग्मय तालिका	Bibliography
वांग्मय वर्गीकरण	Btbliographycal Clasification
वर्गांक	Class number

वितति	Extention
विशिष्ट विषय	Specific Subject
विभाग	Division
वंशवृक्ष	Tree of Porpheri
विषय प्रक्रिया	Subject Device
वर्णान्तर प्रक्रिया	Alphabetic device
व्यवच्छेदकता	Distinctiveness
व्यष्टिकरण	Individualisation
वितति अवरोह	Decreasing extention
वरिम	Spatial

स

स्थायी महत्त्वशाली ग्रन्थ	Classic
स्थानीय परिवर्तन	Local variation
सापेक्षता	Relativity
संकेतन	Notation
सामान्याभिधान	Intension
सङ्गत क्रम	Consistent order
स्मरणीयता	Mnemonic
संक्षेपता	Brevity
साधारणता	Simplicity
स्थानीयकरण	Fixity
संयम	Reticence
सम्बद्ध अनुक्रम	Relevant Sequence
सुसङ्गति	Relevance
स्थायित्व	Permanence
सामान्य उपभेद	Common sub-division

समवाय	Concomitance
सुनिश्चितता	Ascertainability
स्तनिवर्ग	Mammalia

श

शास्त्रीय सिद्धान्त	Connon of classices

श्र

श्रृङ्खला	Chain
श्रृंखला में ग्राहिता	Hospitality in Chain

——

